प्रकाशक
हरिकृष्ण 'प्रेमी'
अध्यक्ष भारती-प्रिंटिंग प्रेस
लाहौर

लेखक की अन्य रचनाएँ

नाटक

रक्षाबंधन	॥।=)
पाताल-विजय	॥।)
शिवा-साधना	१।)

काव्य

अनन्त के पथ पर	१)
आँखों में	१।)
जादूगरनी	॥।)

मुद्रक
मायाराम लखनपाल
भारती-प्रिंटिंग प्रेस
लाहौर

समर्पण

मान्यवर माखनलाल चतुर्वेदी !

इन प्राणों में युग-युग से थी जलती एक भयानक ज्वाला !
तूने संयत करके इसको एक अनोखा किया उजाला।
मरघट की ज्वाला के वदले इसे कुटी का दीप वनाया।
की इस के अस्थिर जीवन पर तूने करुणांचल की छाया।

इस की एक किरण को, प्यारे !
अपना चरण-स्पर्श करने दे।
स्नेही के अन्तर में भी अव
इस को मधुर जलन भरने दे।

'प्रेमी'

दो शब्द

यह नाटक बुंदेलखंड के अमर वीर छत्रसाल के ऐतिहासिक कथानक पर लिखा गया है। मेरा जन्मस्थान गुना (राज्य ग्वालियर) बुंदेलखंड और मालवा की सीमाओं के संधिस्थल पर है। बचपन से मैं बुंदेलों की उद्दंड वीरता की कहानियाँ सुनता आया हूँ। इस युग में भी अनेक बुंदेले ठाकुरों को तलवार की कमाई खाते हुए मैंने देखा है। दारिद्र्य से तंग आकर नौकरी करने के स्थान पर डाके डालना स्वाभिमानी मन को ज़्यादा भाता है। विपरीत परिस्थितियों के आगे सर झुका देने की कमज़ोरी आज तक इस जाति में नहीं आ पाई है। इसका कारण इसका प्राचीन उज्ज्वल इतिहास ही है।

छत्रसाल के पिता चंपतराय का जीवन जितना संघर्षमय, जितना कष्टमय और जितना तेजस्वी रहा है, उतना वीरतम जातियों के इतिहास में थोड़े ही व्यक्तियों का मिलेगा। उनके मरने के बाद अनाथ, दरिद्र, दाने-दाने को मोहताज, अल्प-वयस्क छत्रसाल किस प्रकार केवल अपने वंश के पूर्व गौरव को प्राप्त करने में ही नहीं, बल्कि बुंदेलखंड

से मुग़ल-साम्राज्य की सत्ता को निर्वासित करने में सफल हुए, यह लगन, कष्ट-सहन और साहस का उच्चतम उदाहरण है।

सच पूछो तो यह नाटक मैंने अपने ही मन को धीरज देने के लिए लिखा है। मैं प्रकृति से कोमल किंतु बड़े-बड़े स्वप्न देखने वाला हूँ। 'जहाँ फ़रिश्ते जाने में हिचकते हैं, वहाँ मूर्ख सरपट दौड़ लगाने लगते हैं' वाली कहावत मुझ पर चरितार्थ होती है। अपने इसी स्वभाव के कारण आज मैंने अपने आपको भयंकर तूफ़ान में फँसा लिया है। दूर तक कहीं कोई सहारा नज़र नहीं आता। चारों ओर ख़ूनी लहरें—दिल दहला देनेवाली गर्जना—है, तिस पर अकेलापन मन को खाए जाता है। दुर्बल हाथों में जितना बल था उससे कहीं अधिक उन्होंने परिश्रम किया है। निराशा अंतर के तेज का दीपक न बुझा दे इसीलिए थोड़ा धैर्य का स्नेह संचित करने मैंने यह नाटक लिखा है।

हिंदी में बुंदेलखंड पर पूर्णतया प्रामाणिक और विस्तृत इतिहास आज तक प्रकाशित नहीं हुआ। हाँ, नागरी प्रचारिणी सभा ने एक संक्षिप्त इतिहास छपवाया है। किंतु उससे पाठकों की जिज्ञासा तृप्त नहीं होती। विंध्याचल की तलहटी की भूमि में न जाने कितनी वीर-गाथाएँ सो रही हैं। उन्हें कौन जगावे! श्रीयुत वृंदावन लाल वर्मा ने 'गढ़-कुंडार' और 'विराटा की पद्मिनी' द्वारा बुंदेलखंडी स्वभाव का थोड़ा आभास दिया है; किंतु अभी वहाँ बहुत कुछ है जो कवि और लेखकों की कलम से मूक प्रार्थना कर रहा है।

छत्रसाल पर ऐतिहासिक सामग्री पढ़ते हुए मुझे ज्ञात हुआ कि इस विषय पर लाल कवि-कृत 'छत्र प्रकाश' से ज़्यादा प्रामाणिक ग्रंथ

पाना इस समय दुस्तर है। यह काव्य स्वयं छत्रसाल की आज्ञा से उनके दरबारी कवि लाल ने लिखा है। मैंने भी नाटक का घटना-क्रम उसी के आधार पर रखा है।

बाबू रामचन्द्र वर्मा ने छत्रसाल नामक एक मराठी उपन्यास का हिंदी अनुवाद किया है। वह उपन्यास अपनी रोचकता के कारण हिंदी में काफ़ी प्रचलित हो गया है। मेरे नाटक का घटना-क्रम उससे कुछ भिन्न है, इसीलिए मुझे उसकी चर्चा यहाँ करनी पड़ी है। ऐतिहासिक दृष्टि-कोण से देखा जाय तो वह उपन्यास बहुत ग़लत है। कुछ भयंकर भूलें ये हैं—

(१) हीरादेवी के ज़हर देने से उसके पति पहाड़सिंह की नहीं, बल्कि चंपतराय के भाई भीमजी की मृत्यु हुई थी।

(२) पहाड़सिंह निस्संतान नहीं मरे थे; उनके बाद उनका बड़ा पुत्र सुजानसिंह गद्दी पर बैठा था।

(३) शुभकरण सागर के नहीं दतिया के महाराज थे।

(४) चंपतराय की मृत्यु के कोई दस वर्ष पूर्व छत्रसाल द्वारा रणदूलह खाँ के गिरफ्तार किये जाने की कल्पना करना हास्यास्पद है। इतिहास कहता है कि चंपतराय के स्वर्गवास के समय छत्रसाल ११ वर्ष के थे। फिर इससे दस वर्ष पूर्व छत्रसाल कैसे रणदूलहखाँ को बंदी कर सके!

(५) औरंगज़ेब की लड़की बदरुन्निसा का शुभकरण के बेटे दलपति से प्रेम एकदम बे सिर पैर है।

उस पुस्तक में और भी अनेक बातें हैं जिन्होंने इतिहास का गला

घोंटा है। यह मैं मानता हूँ कि ऐतिहासिक नाटकों और उपन्यासों में भी लेखक कल्पना से कुछ तोड़-मरोड़ कर सकता है—किंतु स्थान, काल, नाम और घटनाओं पर इतनी ज़बर्दस्ती तो अक्षम्य है। मैंने भी इस नाटक में एक पात्र सर्वथा काल्पनिक रखा है; किंतु ऐतिहासिक घटनाओं में ज़रा भी उलट-फेर नहीं हुई।

नाटक कैसा बन पड़ा है, इस विषय में कहने के बजाय सुनना पसंद करता हूँ।

—*प्रेमी*

पात्र-सूची

पुरुष पात्र

छत्रसाल	...	बुंदेलखंड के ऐतिहासिक वीर
चंपतराय	...	छत्रसाल के पिता
भीमसिंह	...	चंपतराय के भाई
अंगदराय	...	छत्रसाल का भाई
वलदिवान	...	छत्रसाल का चचेरा भाई।
प्राणनाथ-प्रभु	...	छत्रसाल के गुरु
शिवाजी	...	महाराष्ट्र-केसरी
पहाड़सिंह	...	ओड़छा के महाराज
सुजानसिंह	...	पहाड़सिंह ज्येष्ठ का पुत्र
इन्द्रमणि	...	सुजानसिंह का छोटा भाई
शुभकरण	...	दतिया के राजा
देवीसिंह	...	चंदेरी के राजा
केशवराय दुरंगी	...	वासा का जागीरदार
औरंगज़ेब	...	दिल्ली का मुग़ल बादशाह
रणदूलहखाँ	...	मुगल सेनापति
तहव्वरखाँ	...	मुग़लसेनापति
वकीखाँ	...	एक मुसल्मान डाकू

स्त्री-पात्र

लालकुँवरि	... छत्रसाल की माँ
हीरादेवी	... पहाड़सिंह की पत्नी
अमरकुँवरि	... पहाड़सिंह के पौत्र जसवंतसिंह की पत्नी
विजया	... प्राणनाथ प्रभु की शिष्या
जहानारा	... औरंगज़ेब की बहन
ज़ेबुन्निसा	... औरंगज़ेब की लड़की

प्रतिशोध



पहला अंक

पहला दृश्य

[विंध्यवासिनी देवी के मन्दिर में प्राणनाथ प्रभु
अकेले विचार कर रहे हैं]

प्राणनाथ प्रभु—गुजरात की शस्य-श्यामला भूमि को छोड़कर मैंने बुंदेलखंड की कठोर पर्वत-माला को अपना क्रीड़ा-क्षेत्र बनाया है। वैभव का कोमल पालना छोड़कर विपत्ति के कठोर झूले में झूलना प्रारंभ किया है। आज मेरे पिता क्षेमजी की संपत्ति और ऐश्वर्य का मुकाबला गुजरात का कोई सेठ नहीं कर सकता, किंतु मुझ पर उसका कोई असर नहीं। मुझे तो भारत के दलित हृदयों की पुकार ने बुंदेलखंड की इन जंगली उपत्यकाओं में खींच लिया है। हृदय अपनी एक साध लेकर जीवित है। आह, वह दिन कब आयगा, जब प्यारा भारत देश स्वतंत्र हो सकेगा।

(लालकुँवरि का एक वर्ष के वालक छत्रसाल को लेकर प्रवेश)

लालकुँवरि—नमस्कार प्राणनाथ प्रभु !

प्राणनाथ—आओ वहन !

(लालकुँवरि देवी के आगे दंडवत करती है)

प्राणनाथ—महाराज चंपतराय जी नहीं आए !

लाल—नहीं, वे जहाँ हैं, वहीं से शत्रु के रक्त से विंध्यवासिनी देवी का अभिषेक कर रहे हैं। आज दुर्गा-अष्टमी के दिन भी उन्हें इस मंदिर में आकर फूलों की माला चढ़ाने का अवकाश नहीं। शत्रु ने उन्हें घेर रखा है, इस लिए वे फूलों के स्थान पर नर-मुण्डों की माला माँ के चरणों पर चढ़ा रहे हैं ! फिर भी उन्हें इस वात का वहुत दुःख है कि वे विंध्यवासिनी की विधिवत् पूजा न कर पावेंगे ।

प्राण—उनकी पूजा सर्वोपरि है वहन ! अत्याचारियों के रक्त से माँ का खप्पर भरता रहे, यही माँ की विधिवत् पूजा है। माँ का खप्पर इस मूर्ति के हाथ में ही नहीं है, वह अनंत आकाश की भाँति व्यापक है। संपूर्ण पृथ्वी ही माँ का खप्पर है। अखिल विश्व-ब्रह्माण्ड ही सर्वव्यापिनी, सर्वशक्तिमान, सृष्टि और मरण की क्रीड़ा में निरत, माँ भवानी का मंदिर है। आज चंपतराय विंध्यवासिनी की जिस प्रकार की पूजा कर रहे हैं, उससे भवानी का हृदय तृप्त हो रहा है ।

लाल—आज विंध्यवासिनी से एक महान् याचना करने आई हूँ। मेरा छत्रसाल आज एक वर्ष का हो गया। भैया प्राणनाथ,

तुम्हें मालूम है, जब छत्रसाल का जन्म हुआ था तब हम लोग मुगल सेना से घिरे हुए थे। तोपों के गर्जन और तलवारों की झनझनाहट में छत्रसाल का प्रथम रोदन नवीन स्फूर्ति संचारित करते हुए प्रारंभ हुआ था।

प्राण—बहन, लालकुँवरि, तुम्हारे जैसे कष्ट संसार के किसी भी देश की किसी भी वीरांगना ने नहीं सहे होंगे। जिन परि-स्थितियों में छत्रसाल का जन्म हुआ, उनकी कल्पना से वज्रहृदय भी काँप उठता है! किंतु, बहन, तुम्हारा साहस भी धन्य है……

लाल—परिस्थितियाँ ही मनुष्य में साहस का संचार करती हैं। छत्रसाल को जन्म-दिन से ही जो कष्ट सहन करना पड़ रहा है वह कौन माई का लाल सह सकता है? और सहकर साँसों की डोर जुड़ी रख सकता है? जब इसने सातवें मास में पैर रखा था, तब हम विन्ध्याचल के भयानक जंगल में शत्रु की आँखों से बचकर थोड़ा विश्राम लेने की इच्छा से डेरा डाले पड़े थे। अचानक ज्ञात हुआ कि शत्रु ने हमारी खोज पा ली है। उस समय हम मुट्ठी भर आदमी थे। वहाँ से विद्युत गति से किसी दूसरे स्थान को प्रस्थान कर देना आवश्यक समझा गया। जब दूसरे स्थान पर पहुँच गए तो पता लगा कि शीघ्रता में छत्रसाल को लाना सभी भूल गये। यह उस भयानक जंगल में हिंस्र पशुओं के अतिरिक्त नर-पशु शत्रुओं के बीच में अरक्षित पड़ा रह गया! 'हाय, छत्रसाल का क्या हुआ होगा!'—मेरे तो कल्पना से ही प्राण सूख गए!

प्राण—प्राण सूखने की वात ही थी वहन ! फिर तुमने छत्रसाल को कैसे पाया ?

लाल—विंध्यवासिनी की कृपा से भैया ! हमारे सिपाही यही सोचते रहे कि अब क्या किया जाय, लेकिन मुझे सोचने का धैर्य कहाँ था ? मैं तुरंत घोड़े पर सवार होकर वहाँ पहुँची। ज्ञात हुआ कि शत्रु वहाँ डेरों का निशान भी न पाकर दूर ही से लौट गए। मेरा लाल पेड़ के नीचे पड़ा मुसकरा रहा था। उसी समय मुझे विश्वास हो गया कि अवश्य छत्रसाल जन्मभूमि के बंधन काटने में सफल होगा।

प्राण—तुम्हारा विश्वास अवश्य सत्य सिद्ध होगा वहन ! किंतु, क्या वह दिन देखने का सौभाग्य हमें भी मिल सकेगा ?

लाल—हम रहें या न रहें, वह दिन आवेगा अवश्य ! मैं प्राणों के नीड़ में इस विश्वास को पाले हुए सहर्ष इस दुनिया से विदा ले सकती हूँ, भैया ! इस वात पर विश्वास करने का एक और कारण भी है ?

प्राण—वह क्या वहन !

लाल—मेरे वड़े पुत्र सारवाहन के वीर-गति पाने का हाल तुम्हें शायद विस्तार से न मालूम होगा। महाराज ने दिल्लीपति शाहजहाँ के सरदार वाकीखाँ को युद्ध में हरा कर मार भगाया था। उस समय सारवाहन अपने साथियों के साथ शिकार खेलने गया था। भागते-भागते वाकीखाँ उधर ही से जा निकला। धूर्त वाकीखाँ ने वालक सारवाहन पर आक्रमण कर दिया। जिस

प्रकार अभिमन्यु ने असंख्य कौरव सेना से अकेले ही युद्ध किया था, उसी तरह १४ वर्ष के मेरे लाल ने वाकीखाँ की सेना से लोहा लिया। वालक होते हुए भी उसने बुंदेलों का नाम नहीं लजाया। सैकड़ों को मौत के घाट उतार कर वीर-गति पाई!

प्राण—वहन, तुम वीर-प्रसू हो। तुम्हारे पुत्रों पर सम्पूर्ण बुंदेलखंड को अभिमान है।

लाल—उसके कुछ दिन वाद सारवाहन ने मुझे स्वप्न में दर्शन दिया और कहा—माँ! मैं शत्रु से प्रतिशोध लेने तुम्हारी गोद में फिर आऊँगा। उसके वाद ही छत्रसाल का जन्म हुआ।

प्राण—विंध्यवासिनी के आशीर्वाद से तुम्हारा स्वप्न सत्य होगा। चंपतराय जी का और तुम्हारा आत्मत्याग व्यर्थ नहीं जायगा।

(युवक वलदिवान और विजया का प्रवेश)

लाल—कौन, वलदिवान!

वलदिवान—(लालकुँवरि के चरण छूता है) अहा आज चाचीजी के दर्शन मिले, ऐसा दिन वड़े भाग्य से मिलता है। विजया, चाची के पैर छुओ।

(विजया लालकुँवरि के चरण छूती है)

लाल—सुखी रहो, वेटी! (वलदिवान से) यह कौन है?

वलदिवान—हमारे गाँव में एक महाराष्ट्र सरदार रहते हैं, उन की यह कन्या है। वचपन से हम साथ ही खेले और पढ़े हैं। प्राणनाथ प्रभु का नाम सुनकर उनसे दीक्षा लेने यहाँ आए हैं।

लाल—दीक्षा ! किस बात की दीक्षा !

प्राणनाथ—बहन, मैं भारतवर्ष में ऐसे युवक-युवतियों का एक दल संगठित कर रहा हूँ, जो आजीवन अविवाहित रहकर, सांसारिक सुखों को तिलांजलि देकर जन्मभूमि के बंधन काटने का उद्योग करेंगे।

लाल—तुम्हारा प्रयत्न स्तुत्य है, भैया ! तुम्हारी संजीवनी शक्ति देश के स्वाधीनता-संग्राम को नित्य नई प्रेरणा देती रहेगी। हाँ···तो मैं क्या कह रही थी······हाँ··मैं देवी से यह याचना करने आई थी कि मेरा छत्रसाल बुंदेलखंड को स्वतंत्र करने में समर्थ हो। देवी की पूजा करके, छत्रसाल पर छत्र-छाया करने की उनसे प्रार्थना करके मुझे शीघ्र वापस जाना होगा, क्योंकि शत्रु-दल छत्रसाल के पीछे उसी तरह पड़ा हुआ है जिस तरह कृष्ण के पीछे कंस के दैत्य पड़े थे।

प्राणनाथ—अच्छा, तो तुम पूजा कर लो बहन !

[लाल कुँवरि देवी की पूजा करती हैं। आँचल से निकाल कर देवी के गले में फूलों की माला पहनाती हैं। फिर थाल में कपूर जलाकर आरती करती हैं। सब आरती गाते हैं।

सब—(गान)

विंध्यवासिनी, देवि, कराली,
सिंहवाहिनी हे असिवाली !
बल-विक्रम-पौरुष की जन्मदायिनी माता !
शिव का डमरू तेरा अविरल गौरव गाता !
तव चरणों पर यम युग-युग से शीश झुकाता !

विश्व-वंद्य, हे दुर्गा, काली,
विंध्य-वासिनी देवि कराली !

हृदय-रक्त से बुंदेलों ने पाँव पखारे,
तभी बने हैं वे तेरी आँखों के तारे !
रिपु से लोहा लेते तेरे शूर सहारे !

पिला रही तू बल की प्याली,
विंध्यवासिनी देवि कराली !

विंध्याचल की कठिन कटीली पर्वत-माला ,
यहाँ साधना-दीप सुतों ने तेरे बाला !
रहे प्रज्वलित बुंदेलों के उर की ज्वाला !

अमर बुँदेला-जाति निराली ,
विंध्यवासिनी, देवि कराली !

[आरती समाप्त होती है । प्राणनाथप्रभु लाल सिंदूर से सब के टीका करते हैं]

प्राणनाथ—(बालक छत्रसाल के टीका करते हुए) बेटा, सिंदूर से भी गहरी लाली से बुंदेलखंड की काली पहाड़ियों को तुम्हारी तलवार स्नान कराए—यह विंध्यवासिनी देवी की ओर से प्राणनाथ प्रभु का आशीर्वाद है ।

लालकुँवरि—(छत्रसाल को विंध्यवासिनी की मूर्ति के आगे लेटा कर) माँ ! यह तुम्हारा ही पुत्र है । बुंदेलों के आदि पुरुष ने अपना मस्तक तुम्हारे चरणों में चढ़ा देने में संकोच नहीं किया था, किंतु, तुम्हीं ने उनका हाथ रोक दिया था, फिर भी तलवार

के आघात से गर्दन से खून की कुछ बूँदें निकलकर तुम्हारे चरणों पर गिर ही पड़ी थीं। तभी से हम लोग बुंदेले कहलाए हैं। माँ, छत्रसाल को भी वह साहस देना जिससे वह बुंदेलखंड का अपमान करनेवाले शत्रुओं से प्रतिशोध लेने में समर्थ हो! (छत्रसाल को गोद में लेकर) अच्छा तो अव मैं जाती हूँ।

(एक ओर से लाल कुँवरि का और दूसरी ओर से शेष सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[स्थान—ओड़छा के पास हरदौल का चबूतरा। समय—संध्या। एक बुंदेला और एक मुसलमान सैनिक का बातें करते हुए प्रवेश]

फ़तह खाँ—तुम्हारा सूवा भी वड़ा प्यारा है, भाई गंभीरसिंह! अगर फिर कभी इस मुल्क में आना हुआ तो तुम्हें साथ लेकर एक दफ़ा बुंदेलखंड के जंगलों, पहाड़ों, नदी-नालों, तालावों और वावड़ियों को जी भर कर देखूँगा। तुम वड़े खुश-क़िस्मत हो जो ऐसे ख़ूवसूरत सूवे में पैदा हुए हो!

गंभीरसिंह—भाई फ़तहखाँ, सौन्दर्य क्या वस्तु है, यह हम नहीं जानते। हम बुंदेले तो केवल अपने इस पहाड़ी देश को जान से अधिक प्यार करना जानते हैं। विन्ध्याचल ने हमें चट्टान की तरह दृढ़ रहना सिखाया है, उसकी चोटियों ने हमें अपना मस्तक किसी के आगे न झुकाने की दीक्षा दी है।

(गंभीरसिंह बात समाप्त करके हरदौल के चबूतरे के आगे दण्डवत करता है, दण्डवत करके जब वह उठता है तो उसकी आँखों में आँसू छलकते दिखाई देते हैं)

फ़तहखाँ—तुम्हारी आँखों में ये आँसू कैसे ?

गंभीरसिंह—यह बुंदेलों के बलिदान और वीरता के आदर्श लाला हरदौल का चबूतरा है। वे हरदौल, जिनका नाम लेने से ही जीवन पवित्र हो जाता है। भरत और लक्ष्मण के भातृ-प्रेम के इतने गीत गाए जाते हैं, किंतु हरदौलसिंह ने भाई और भाभी के लिए जो जीवन-बलिदान दिया है वह विश्व के इतिहास में अप्रतिम है! उनकी याद से प्रत्येक बुंदेले की आँखों में आँसू आ ही जाते हैं।

फ़तहखाँ—बुंदेलखंड के बाहर भी मैंने हरदौल के चबूतरे बने हुए देखे हैं।

गँभीर—यदि संसार के कोने-कोने में उनकी स्मृति में मंदिर बनवाए जावें, तो भी मनुष्यता उनके प्रति उचित आदर प्रदर्शित न कर सकेगी।

फ़तहखाँ—इनका कुछ हाल तो बताओ।

गंभीर—ओड़छा के वर्तमान महाराज पहाड़सिंह को तो तुमने देखा ही है। कुछ ही वर्ष पहले की बात है, इनके बड़े भाई जुझारसिंह ओड़छा के महाराज थे! हरदौलसिंह उनके सौतेले छोटे भाई थे! जुझारसिंह की पत्नी—ओड़छे की महारानी—अपने हरदौल लाला को सगे बेटे की तरह मानती थीं और हरदौल उन्हें सगी माँ की भाँति! किंतु भाग्य की विडम्बना तो देखो, उन्हीं स्नेह-शीला, मातृ-हृदया भाभी को एक दिन अपने देवर को हलाहल का प्याला पिलाना पड़ा!

फ़तहखाँ—सो क्यों?

गंभीर—बुंदेलों की जाति भी निराली है और नीति भी! उसे क्रोध में अपना-पराया, भला-बुरा, न्याय-अन्याय, सच-झूठ कुछ नहीं सूझता! बुंदेले के हृदय में एक बार किसी के प्रति कोई सन्देह हो जावे, तो फिर वह या तो उसकी जान ले लेगा या अपनी दे देगा! हम लोगों का यही स्वभाव है भैया!

फ़तहखाँ—लेकिन हरदौल ने........

गंभीर—कहता तो हूँ! एक दिन महारानी ने भोजन करते समय भूल से सोने का थाल हरदौलसिंह के आगे और चाँदी का महाराज के आगे रख दिया। उसी दिन महाराज जुझारसिंह लंबी अवधि के बाद राजधानी में लौटे थे। उन्होंने समझा कि उनकी अनुपस्थिति में महारानी ने भोजन के थाल ही नहीं उलट-पलट दिए, बल्कि हृदय का संचित प्रेम भी उलट-पलट दिया है।

फ़तहखाँ—छिः जुझारसिंह क्या अक़्ल के अंधे थे! फिर क्या हुआ?

गंभीर—फिर क्या हुआ? रात को महारानी ने महाराज से थाल के पलट जाने के लिए क्षमा माँगी। महाराज ने उसके सतीत्व पर आक्षेप किया और कहा कि इसका प्रायश्चित्त करने के लिए हरदौल को अपने हाथ से ज़हर पिलाना पड़ेगा।

फ़तहखाँ—और महारानी ने हरदौलसिंह को ज़हर देना मंज़ूर कर लिया?

गंभीर—नहीं कैसे करतीं? बाजी ही ऐसी लगी हुई थी। हिन्दू स्त्री सब कुछ सह सकती है पर अपने सतीत्व पर लांछन नहीं सह सकती, और अपने पति की आज्ञा को तो वह ईश्वर की आज्ञा से भी बड़ा समझती है। चाहे वह न्यायपूर्ण हो या अन्यायपूर्ण, पति की आज्ञा का पालन करना वह अपना सबसे बड़ा कर्म समझती है!

फ़तहखाँ—अच्छा तो फिर क्या हुआ?

गंभीर—महारानी ने महाराज से कहा कि मैं हरदौल को अपना सगा बेटा समझती हूँ और वह मुझे अपनी सगी माँ समझता है। मुझे विश्वास है कि यदि उसे यह समाचार मिल जाय तो वह अपने हाथ से विष की प्याली पी लेगा। उन्होंने उसी समय हरदौलसिंह को बुलाया। महारानी ने कपट नहीं किया, हरदौलसिंह से स्पष्ट कहा—'तुम्हारे भैया ने तुम्हारे और मेरे आचरण में पाप की छाया देखी है और मुझे आज्ञा दी है कि मैं तुम्हें ज़हर दे दूँ।'

फ़तहखाँ—कैसी रोंगटे खड़े कर देने वाली बात है !

गंभीर—सो तो है ही ! हरदौलसिंह ने तत्क्षण भैया और भाभी के चरण छुए और विष की प्याली मुँह से लगा ली ! महारानी चीत्कार करके बेहोश होगईं, महाराज किंकर्तव्य-विमूढ़ हुए देखते रह गए । पर हरदौल ने एक घूँट में प्याली खाली कर के उनके चरणों पर अपने प्राण निछावर कर दिए ।

फ़तहखाँ—शाबास ! (कुछ ठहर कर और सोचकर) लेकिन मैं समझता हूँ कि हरदौलसिंह को अपनी जान न देनी थी ।

गंभीरसिंह—जान न देनी थी ! जान न देते तो भाई-भाई की कलह से संपूर्ण बुंदेलखंड नष्ट न हो जाता ! उस बुंदेला वीरांगना के गौरव का वह लांछन इतिहास में अंकित न हो जाता ! हरदौलसिंह की वीरता के केवल ओरछा के सैनिक ही नहीं सारे बुंदेलखंड के बुंदेले पुजारी थे । जुझारसिंह वीर थे, पराक्रमी थे; किंतु, हरदौलसिंह के एक इशारे से उनका सिंहासन उलट सकता था ! लेकिन हरदौल बड़े भाई को सच्चे दिल से प्यार करते थे, भाभी को माँ की भाँति मानते थे । वे युद्ध करके भाई से राज्य छीन सकते थे, पर भाभी के अंचल पर जो अपयश का दाग़ लगा था, उसे नहीं धो सकते थे । उसे धोने के लिए तो प्राणों के बलिदान ही की आवश्यकता थी । यदि उस देवी के प्रति जुझारसिंह के हृदय में संदेह का एक कण भी छिपा रह जाता तो उससे संपूर्ण बुंदेला जाति का मस्तक सदा के लिए लज्जा से झुका रहता ।

झुकना संपूर्ण बुंदेलखंड का अपमान है, इसीलिए मैंने मुग़लों के पिट्ठू पृथ्वीसिंह के स्थान पर आप जैसे स्वाभिमानी वीर के सिर पर ओड़छे का राजमुकुट रखे जाने के लिए तलवार उठाई है।

पहाड़सिंह—विंध्यवासिनी की कृपा से पहाड़सिंह परीक्षा में सफल होगा।

भीमसिंह—आप के रुख़ पर बहुत कुछ निर्भर है पहाड़सिंहजी! बुंदेले अगर एक होना जान लें तो संसार की कौन-सी शक्ति है जो उनकी स्वाधीनता का अपहरण कर सके। दिल्ली और आगरा की नाक के पास रह कर भी बुंदेलों का देश विदेशियों के अनेक आक्रमणों के होते हुए भी किसी प्रकार अपनी स्वाधीनता की रक्षा का यत्न करता रहा है। यद्यपि हम लोग आपस में लड़ते रहे हैं, फिर भी छिन्न-भिन्न शक्तियाँ ही विदेशियों से सफलता पूर्वक लोहा लेती रही हैं। यदि वे एक होकर मुठभेड़ कर सकें तो बुंदेलखंड का ही नहीं भारत का इतिहास दूसरी ही रेखाओं में लिखा जाय।

पहाड़सिंह—आप ठीक कहते हैं, भीमसिंहजी! आप दोनों भाई वास्तव में बुंदेलखंड के अभिमान हैं, बुंदेलों के गौरव-शिखर हैं। आपने जो आग बुंदेलों के हृदय में प्रज्वलित की है, वह कभी न बुझेगी।

चंपतराय—तो आओ, हम लाला हरदौल के चबूतरे पर हाथ रख कर इस बात की शपथ लें कि हम सब बंधु एकता के सूत्र में बँध कर बुंदेलखंड को पूर्ण स्वाधीन बनावेंगे।

पहाड़सिंह—मैं इस शुभ कार्य में आपका साथ दूँगा। फिर भी प्रतिज्ञा के बंधन में मुझे मत बाँधिए। बुंदेले की बात ही पर्याप्त है, प्रतिज्ञा तो बाहरी वस्तु है।

भीमसिंह—किंतु, लाला हरदौल का बलिदान याद रहे, पहाड़-सिंह जी! यहाँ जो तीन प्राणी खड़े हैं, उनके शरीर में एक ही वंश का रक्त प्रवाहित होता है। हम में कोई जुझारसिंह अब पैदा न हो।

पहाड़सिंह—विश्वास रखिए भीमसिंहजी! चलिए, अब हमें चलना चाहिए।

(तीनों का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान—ओड़छे के राज-महल का एक भाग। सन्ध्या और रात्रि के बीच का समय। हीरादेवी अकेली]

हीरादेवी—शुभकरण अभी तक आए नहीं! वे जितने वीर हैं, उतने ही भोले हैं। आज यह हीरादेवी उन्हें मूर्ख बनाकर अपना अभीष्ट सिद्ध करेगी।

(एक दासी का प्रवेश)

हीरादेवी—कौन, मालती ?

दासी—हाँ, महारानीजी ! रसोई तैयार है।

हीरादेवी—आज महाराज महेवा के चंपतराय के साथ गए हैं। देर से आवेंगे ! भोजन भी आज देर से किया जायगा।

दासी—बहुत अच्छा ! (प्रस्थान)

हीरादेवी—उस दिन विंध्यवासिनी देवी की वार्षिक पूजा थी। संपूर्ण बुंदेलखण्ड प्रान्त के, सभी प्रमुख बुंदेले महामाया की पूजा करने आए थे। पुजारी ने पूजा प्रारंभ करने की अनुमति ओरछे के महाराज पहाड़सिंह और महारानी हीरादेवी से न लेकर महेवा के चंपतराय और उनकी पत्नी लालकुँवरि से ली। मानों वे ही तो समस्त बुंदेलखण्ड के छत्रपति हैं ! कहाँ महेवा की ३५०) महीने की आमदनी की जागीर का जागीरदार और कहाँ ओड़छा के महाराज ! कहाँ राजा भोज कहाँ भुजवा तेली !

(शुभकरण का प्रवेश)

हीरादेवी—आइए शुभकरणजी ! आपकी प्रतीक्षा करते करते तो आँखें पथरा गईं !

शुभकरण—विलंब के लिए क्षमा चाहता हूँ हीरादेवी ! एक आकस्मिक कारण से विलंब अनिवार्य होगया। मार्ग में बेतवा नदी के तट पर एक मुग़ल सिपाही को तलवार के घाट उतारना पड़ा।

हीरादेवी—क्यों ?

शुभकरण—वहाँ एक १५ वर्ष की बालिका जल भरने आई थी। उस सिपाही ने उसका मार्ग रोक लिया। अचानक में उधर

से आ निकला। किसी बुंदेले की कन्या की ओर कोई पाप की दृष्टि से देखे यह इस शुभकरण से कदापि नहीं सहा जा सकता। मैंने उसी क्षण उस सिपाही का सिर धड़ से जुदा कर दिया।

हीरादेवी—इसका राजनीतिक परिणाम क्या होगा [illegible] महाराज ने इस बात को नहीं सोचा!

शुभकरण—शुभकरण पहले बुंदेला है, [illegible] महाराज। जात्यभिमान की रक्षा करने में उसे [illegible] रहना पड़े, तो भी वह भाग्य को दोष न देगा। [illegible] संकटों के वज्रपात को सहते हुए भी उसका मन मैला न होगा।

हीरादेवी—वास्तव में आप जैसा वीर आज [illegible] खंड में दूसरा नहीं है। चंपतराय का तो लोग [illegible] से अधिक सम्मान करते हैं।

शुभकरण—ऐसा न कहिए महारानी! उनके त्याग को [illegible] नहीं पा सकता।

हीरादेवी—इसे तुम त्याग कहते हो, शुभकरणजी! [illegible] खंड की जनता को स्वतन्त्रता का नाम लेकर उत्तेजित [illegible] हैं, विनाश की ओर ढकेल रहे हैं, केवल इसलिए [illegible] बुंदेलखंड के सारे राजाओं, जागीरदारों, और [illegible] अस्तित्व मिटा कर स्वयं अपना प्रभुत्व स्थापित कर [illegible] इसे त्याग कहते हो?

शुभकरण—छिः! छिः! महारानी हीरादेवी! इन शब्दों को कोई बुंदेला सहन नहीं कर सकता। इस जाति के लिए [illegible]

जितना स्वाभाविक है, किसी सज्जन की नीयत पर शक करना उतना ही असम्मानजनक है । मैं चंपतराय के साथ खेला, पढ़ा और बड़ा हुआ हूँ। मैं उन्हें खूब जानता हूँ। आप हम दोनों के बीच में भिन्नता की दीवार क्यों खड़ी करती हैं ?

हीरादेवी—मैं कहती हूँ कि बुंदेलखंड में आज चंपतराय का जो मान है, वह शुभकरणजी का क्यों नहीं ? क्या आप के बाहुओं में उन से कम बल है ? चंपतराय जो आज सारे बुंदेलखंड में आपको देश-द्रोही कहते-फिरते हैं, क्या उसका प्रतिशोध आप न लेंगे ?

शुभकरण—प्रतिशोध लेने का तो मैं आपको पहले ही वचन दे चुका हूँ। चंपतराय से रणभूमि में लोहा लेने में शुभकरण कभी पीछे न हटेगा।

हीरादेवी—किंतु, हीरादेवी आपको तलवार चलाने का कष्ट न देगी। उसने ऐसा उपाय सोचा है कि बिना रक्त-पात के ही काँटा निकल जाय।

शुभकरण—वह क्या ?

हीरादेवी—ओड़छे के महाराज ने कल चंपतराय को भोजन करने को आमन्त्रित किया है। बस कल ही उनकी जीवन-लीला समाप्त हो जायगी ।

शुभकरण—अर्थात् कल तुम उन्हें जहर दोगी !

हीरादेवी—हाँ।

शुभकरण—मायाविनी ! धिक्कार है तुम्हें। यह बात सोचते

हुए तुम्हारी आत्मा नहीं काँपी ? इस बात का उच्चारण करते हुए तुम्हारी जबान नहीं गिर पड़ी ? तुम नारी हो हीरादेवी ! नारी स्नेह और वात्सल्य की अधिष्ठात्री देवी होती है; प्रेम करुणा, और ममता की सुर-सरिता होती है। नारी होकर तुम किस नीचता के कलंक में पतित होने जा रही हो ? पुरुष इतना नीच हो सकता है, किंतु नारी……

हीरादेवी—नारी ! शुभकरणजी, आप भोले हैं। नारी के हृदय में जलती हुई ईर्षा के ज्वालामुखी की भीषण आग आप नहीं देख सकते। फिर हमें तो चंपतराय का अंत अभीष्ट है—वह चाहे शुभकरण की तलवार से हो या हीरादेवी के जहर से। इन दोनों में अंतर ही क्या है ?

शुभकरण—अंतर ! बहुत बड़ा अंतर है ओड़छा की महारानी ! बुंदेले सब कुछ हैं, पर कायर नहीं; वे सब कुछ कर सकते हैं, पर विश्वासघात नहीं। उन्हें जो कुछ करना होता है, वह ललकार कर करते हैं। वे युद्ध में आमने-सामने तलवार चलाते हैं। बुंदेलों की प्रतिष्ठा को धूल में मिलाने वाली यह कुबुद्धि तुम्हें किसने दी महारानी ! मालूम होता है यह तुम्हारे मंत्री नसीमुद्दौला की हरकत है। मैं उस दुष्ट का सिर धड़ से अलग कर दूँगा, अभी, इसी क्षण। जिस विकृत मस्तिष्क से यह कल्पना निकली है, मैं उसे बेतवा में प्रवाहित करके दम लूँगा।

(म्यान से तलवार निकालते हैं और प्रस्थानद्योत होते हैं। हीरादेवी हाथ पकड़ लेती है)

हीरादेवी—ठहरो शुभकरणजी, उत्तेजित न हो। बुंदेला एक बार वचन देकर फिर उससे नहीं फिर सकता। तुम मेरी सहायता करने को वचन-बद्ध हो। पाप में या पुण्य में, दुख में या सुख में, नरक में या स्वर्ग में, दतिया के महाराज शुभकरण ओड़छे की महारानी हीरादेवी का साथ नहीं छोड़ सकते। बुंदेला अपनी आत्मा को कुचल कर भी, अपने हृदय पर अत्याचार कर के भी अपने वचन पर दृढ़ रहता आया है। जो आन तुम्हें इतनी प्यारी है, उसे क्या तुम ज़रा से मत-भेद से नष्ट हो जाने दोगे? बोलो शुभकरण, क्या तुम हीरादेवी को वचन देकर उससे फिर जाओगे?

शुभकरण—यह कैसे हो सकता है? पर तुम आख़िर चाहती क्या हो?

हीरादेवी—कुछ नहीं। केवल यह कि तुम मौन रहो और चुपचाप हीरादेवी का तांडव-देखे जाओ।

शुभकरण—किंतु बुंदेलखंड की स्वतंत्रता का साधक .....

हीरादेवी—फिर वही? यदि स्वतंत्रता ही की इच्छा है तो स्वयं आगे बढ़ो। क्या चंपतराय ही ने इसका ठेका ले लिया है? क्या दतिया के महाराज शुभकरण के बाहुओं में बुंदेलखंड को स्वाधीन करने की शक्ति नहीं है? क्या ओड़छे के महाराज में यह पौरुष नहीं है? सम्मान के इस सर्वोच्च सिंहासन पर चंपतराय को मैं नहीं बैठने दूँगी। बुंदेलखंड को स्वतंत्र करने का श्रेय शुभकरण जैसे वीर बुंदेला को मिलना चाहिए।

शुभकरण—अच्छा, महामाया, करो सर्वनाश का अनुष्ठान। किंतु मैं यहाँ रहकर यह दृश्य न देख सकूँगा। मैं अभी वापिस दतिया जाता हूँ। विष यदि असफल सिद्ध हो, तो शुभकरण की तलवार को याद करना।

(शुभकरण का प्रस्थान)

हीरादेवी—ओड़छे के राज-महल के इतिहास! तेरे अक्षर भी अद्भुत हैं! उस दिन पुरुष-हृदय के संदेह ने अपने छोटे भाई हरदौल के प्राण स्नेहमयी भाभी के हाथ से विष का प्याला पिलाकर लिए थे। यह घटना अभी पुरानी नहीं हुई कि नारी-हृदय की ईर्षा फिर एक देवर के प्राण लेना चाहती है। चंपतराय और लालकुँवरि का यश ओड़छे की राज-शक्ति से भी उच्च स्थान पावे, यह हीरादेवी सहन नहीं कर सकती। देखें कल क्या गुल खिलता है!

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[ओड़छे के राजमहल का भोजन-भवन। तीन थाल परसे हुए रखे हैं। भीमसिंह और विजया का प्रवेश]

विजया—उधर चंपतराय जी, पहाड़सिंह जी और हीरादेवी बुंदेलखंड को एक सूत्र में बाँधने के उपायों पर परामर्श कर रहे

हैं, इधर मैं आप को उससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य के लिए बुला लाई हूँ।

भीम—किंतु, तुम्हारा परिचय ?

विजया—मेरा परिचय प्राणनाथ प्रभु और बलदिवान के अतिरिक्त कोई नहीं जानता। मैं परिचय-हीन रहकर ही बुंदेलखंड के स्वाधीनता-यज्ञ में भाग लेना चाहती हूँ।

भीम—किंतु परिचय देने में हानि क्या है ?

विजया—एक निर्धन कृषक-बाला क्या कहकर राजा-महाराजाओं को अपना परिचय दे ? और परिचय देने का समय भी कहाँ है ? एक क्षण के विलंब ही से बुंदेलखंड की स्वाधीनता के रक्षक महाराज चंपतराय के प्राणों की रक्षा कठिन हो जायगी।

भीम—यह तुम क्या कहती हो ?

विजया—मैं सत्य कहती हूँ, भीम जी ! प्राणनाथ प्रभु ने हीरादेवी की गति-विधि से आशंकित हो, मुझे उनकी दासी बन कर रहने की आज्ञा दी है। आज जो अनर्थ होने जा रहा है, जो षड्यंत्र रचा गया है, उसका उपचार तुरंत होना चाहिए।

भीम—क्या षड्यंत्र रचा गया है ? किसने षड़यंत्र रचा है ?

विजया—ये जो तीन थाल परोसकर रखे गए हैं, इनमें बीच वाले थाल में कालकूट विष मिला हुआ है। चंपतराय जी को लाकर इसी थाल पर बैठाया जायगा। हीरादेवी का यह षड़यंत्र…

भीम—(त्योरियाँ चढ़ जाती हैं) यह बात है ! दुष्टा पिशा-

चिनी हीरादेवी ! आज जब भैया चंपतराय यहाँ आए तो उसने उनकी आरती उतारी थी। अपने हाथ से उनके पैर पखार कर वह जल आँखों से लगाया था। कहा था—ओड़छे की राजगद्दी के रक्षक, बुंदेलखंड की स्वाधीनता के पुजारी चंपतराय का जितना आदर हो कम है। किसे पता था कि वह केवल छल था! मायाविनी, हीरादेवी ! तेरा सिर अभी धड़ से जुदा किए देता हूँ।

विजया—शांत हो भीम जी, क्रोध करने से कुछ न होगा। हीरादेवी ने इस बात का प्रबंध कर रखा है कि षड्यंत्र का भंडा फूट जाने पर भी चंपतराय जी यहाँ से जीवित न लौटें। यहाँ आप दोनों भाइयों के अतिरिक्त आपका सहायक कोई नहीं है। उत्तेजित होकर शीघ्रता में कुछ कीजिएगा तो आप दोनों भाइयों को प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। अब भलाई इसी में है कि आप यह प्रकट न होने दें कि आप हीरादेवी के षड्यंत्र को जान चुके हैं। अन्यथा उसी क्षण आप दोनों को घेर कर समाप्त कर दिया जायगा। मेरे पास समय नहीं है। मैं अब जाती हूँ। महाराज की रक्षा के लिए कुछ सैनिकों को लाने का उद्योग करूँगी। मेरे आने तक आप किसी प्रकार महाराज के प्राणों की रक्षा कीजिए।

(प्रस्थान)

भीम—इस कठिन प्रसंग पर मुझे क्या करना चाहिए ? भैया पर सारे बुंदेलखंड का भविष्य निर्भर है। यदि यह रहस्य प्रकट करता हूँ तो भैया के प्राणों पर आ बनती है और जन्मभूमि की

स्वतंत्रता का स्वप्न उनके साथ ही समाप्त हुआ जाता है। नहीं, यह न होगा ; देश की स्वाधीनता के रक्षक के प्राणों की रक्षा मैं अपने प्राण देकर करूँगा। इस षड्यंत्र को प्रकट करने के बदले अपने प्राण देकर उस वीर बाला के लौटने तक स्थिति सँभाले रहूँगा। मेरे प्राणों का इससे बढ़कर उपयोग कब होगा !

(चंपतराय, हीरादेवी और पहाड़सिंह का प्रवेश)

हीरादेवी—भीम लाला तो पहले से ही यहाँ उपस्थित हैं ! क्यों क्या पेट में चूहे बहुत ज्यादा कूद रहे हैं ?

भीम—हाँ भाभी ! बात कुछ ऐसी ही है। मेरा नाम भी तो छाँट कर ही रखा गया है। भीम की भाँति मैं भी बड़ा पेटू हूँ।

हीरादेवी—(हँसकर) यही सोचकर तो भोजन पहले से परसवा कर रखा दिया था। मैं जानती थी कि मेरे छोटे देवर रण में जितने धीर हैं, भोजन में उतने ही अधीर। तो फिर देर क्यों कर रहे हैं। कीजिए श्रीगणेश।

(पहाड़सिंह, चंपतराय और भीमसिंह भोजन करने बैठते हैं। चंपतराय पहले थाल पर बैठते हैं)

हीरादेवी—लाला तुम्हारे लिए बीच का सोने का थाल है। चाँदी के थाल तो महाराज और भीम जी के लिए हैं।

(हाथ पकड़कर चंपतराय को सोने के थाल पर बैठाती है)

भीम जी—(चंपतराय के आगे का थाल अपने आगे खींच लेते हैं) वाह भाभी वाह ! देख लिया तुम्हारा प्रेम ! चाँदी के थाल में जाए मेरी बला। भोजन मेरा विशेष प्रिय विषय है। मैं इस में

भैया की महत्ता स्वीकार नहीं कर सकता। रण में, त्याग में, बलिदान में, भले ही मैं उनकी चरण-रज की भी होड़ न कर सकूँ; पर भोजन में.........यह असंभव है। और फिर सब जगह भैया ही का आदर अधिक क्यों हो? क्या मेरे शरीर में रुद्रप्रताप का रक्त नहीं प्रवाहित होता? क्या मैं तुम्हारा देवर नहीं हूँ? चाहे जो हो, मैं आज सोने ही के थाल में भोजन करूँगा।

चंपत—अवश्य करो, भाई! (थाल भीम जी को देते हैं) मैं तुम्हारी तरह हँसी नहीं करता, बिलकुल गंभीरता से कहता हूँ, कि तुम किसी बात में मुझसे कम नहीं हो। आजतक मुग़लों के साथ चंपतराय ने जितने भी युद्ध किए हैं, उनमें तुम्हारे ही पराक्रम से वह विजयी हुआ है।

पहाड़सिंह—अच्छा तो अब श्रीगणेश कीजिए।

(सब भोजन प्रारंभ करते हैं; हीरादेवी भीम जी की ओर देखकर दाँतों से ओंठ दबाती है और सहसा प्रस्थान करती है)

भीम—(थाल पर से आधा भोजन करने के बाद ही उठ कर) बस, अब भीम आपकी अधिक सेवा न कर सकेगा, भैया! जान या अनजान में यदि उससे कोई अपराध बन गया हो तो उसे क्षमा कर देना। इन प्राण-पखेरुओं को देह के पींजरे से मुक्त करने के लिए इतना ही भोजन पर्याप्त है। अब मैं उठता हूँ।

पहाड़—हैं, यह आप क्या कह रहे हैं, भीम जी!

भीम—कल ही स्वर्गीय हरदौलसिंह के चबूतरे के आगे हम सब भाइयों ने एक होकर जन्मभूमि के स्वाभिमान की रक्षा करने

की शपथ ली थी। किसे पता था कि एक ही दिन में दुनिया इतनी बदल जायगी। सुनिए, महाराज पहाड़सिंह जी! बुंदेलखंड की स्वाधीनता के अमर पुजारी चंपतराय के प्राण इतनी आसानी से नहीं लिए जा सकते। जिस विंध्यवासिनी देवी ने उनकी मुग़लों से होनेवाले बीसियों भयंकर युद्धों में रक्षा की है, उसी ने आज भी उन्हें बचाया है।

(अशक्त हो कर लेटते हैं)

चंपतराय—(भीमसिंह का सिर गोद में लेकर उस पर हाथ फेरते हुए) यह क्या हुआ भैया! क्या तुम भी मुझे छोड़ जाओगे?

भीम—हम समझे थे कि वीरवर हरदौल के बलिदान से बुंदेलखंड के राजवंशों से पारस्परिक ईर्षा का अंत हो जायगा, किंतु, अभी वह सुदिन नहीं आया। इस थाल में विष था, यह मैं पहले ही जान चुका था। बुंदेलखंड के स्वाभिमान और स्वातंत्र्य के रक्षक चंपतराय के प्राण बहुमूल्य हैं; इसीलिए भीम ने अपना जीवन उन पर न्योछावर कर दिया।

चंपतराय—यह तुमने पहले क्यों नहीं कहा, भैया! हम दोनों भाई मिलकर ओड़छे की सारी सेना से भिड़ सकते थे। तुम्हें प्राण देने की क्या आवश्यकता थी?

भीम—अवसर ही ऐसा था भैया! अब विदा········ (मृत्यु)

चंपतराय—(भीमसिंह का मस्तक अपनी गोद से नीचे रख कर) जाओ भैया! तुमने सिद्ध कर दिया कि तुम वास्तव में मुझ से

महान् हो ! चंपतराय के हृदय की ज्वाला तुम्हारे वलिदान से उज्ज्वलतर हो चुकी है। इस भीषण विश्वासघात का प्रतिशोध अवश्य लिया जायगा। पहाड़सिंह, इस समय मैं निश्शस्त्र हूँ, तुम बुंदेला हो—परमप्रतापी, सिंह से निश्शस्त्र द्वन्द-युद्ध कर उसे मार डालने वाले, रुद्रप्रताप के वंशज हो। तुम्हें अपने भाई चंपतराय से ईर्षा थी तो तलवार लेकर उससे द्वंद-युद्ध करते। ज़हर क्षत्रियों का अस्त्र नहीं है। लाओ, मुझे एक तलवार दो भैया !

(हीरादेवी का सैनिकों सहित प्रवेश)

हीरादेवी—चंपतराय, अब तुम कभी तलवार न पकड़ सकोगे। महेवा के तुच्छ जागीरदार ने अपने आपको बुंदेलखंड का भाग्य-विधाता समझ लिया था न ? तुम्हारी यह स्पर्धा ! सैनिको, बाँध लो इन्हें ।

(विजया का सहसा कई सैनिकों के साथ प्रवेश)

विजया—सावधान! देशद्रोहियों और विदेशी आततायियों को दंड देने के लिए चंपतराय के हाथ में अभी बहुत दिनों तक तलवार शोभित होगी। हीरादेवी ! तुम्हारे कुकृत्य से आज संपूर्ण नारी-जाति का मस्तक लज्जा से झुक गया है। (चंपतराय से) लीजिए महाराज, यह तलवार और चलिए मेरे साथ। ज़रा विलंब हो गया, इसका मुझे खेद है; नहीं तो भीम जी के प्राणों की भी रक्षा हो जाती। (अपने साथियों से) भीमजी के शव को सँभालकर ले चलो ?

(चंपतराय, विजया और उसके साथियों का भीम जी की लाश के साथ प्रस्थान)

पहाड़सिंह—यह क्या किया हीरादेवी ! तुमने बुंदेलों के यश को कलंकित कर दिया।

हीरादेवी—चुप रहिए, महाराज ! ओड़छे का राज-दंड आप जैसे अकर्मण्यों के हाथ में पड़ कर निर्बल हो गया है। आज संपूर्ण बुंदेलखंड चंपतराय का बेदाम का गुलाम हो गया है। ओड़छे की पूर्व-प्रतिष्ठा खाक में मिल गई है। आप एक मामूली जागीरदार के कृपा-पात्र बनकर रह सकते हैं, हीरादेवी नहीं। आज वह बच निकला है, लेकिन कभी न कभी मेरी आकांक्षा पूरी होगी। मैं अभी उसका पीछा करती हूँ। (प्रस्थानोद्यत होती है)

पहाड़—ठहरो, हीरादेवी ! भीम भी हमारा भाई है। उसका क्रिया-कर्म निर्बाध संपन्न हो जाने दो। रुद्रप्रताप के वंशज के शव का अपमान न करो रानी ! कुछ दिन धैर्य से काम लो। मानवी सहानुभूति से शून्य हृदय बुंदेलों को शोभा नहीं देता। समय पर पहाड़सिंह एक वीर की तरह तलवार चला कर तुम्हारी आकांक्षा पूरी करेगा। चलो अब यहाँ से चलें।

(दोनों का प्रस्थान)

[पट-परिवर्त्तन]

(नेपथ्य में गान)

लाल दिवस आए हैं, लाल !
नभ में श्याम-घटाएँ छाई !
उधर उमड़ती आँधी आई
रण संदेश वायु है लाई !
जलती है प्राणों में ज्वाल !
लाल दिवस आए हैं, लाल !
विचलित मत होना बुंदेलो !
हँस कर वज्र हृदय पर झेलो !
विकट संकटों से खल खेलो !
झुके न विंध्याचल का भाल !
लाल दिवस आए हैं, लाल !!

(गाते-गाते प्राणनाथ प्रभु का प्रवेश)

लाल—आइए प्राणनाथ प्रभु !

प्राण—वहन एक समाचार सुना था। सुनकर विश्वास नहीं हुआ। तुम से उसकी वास्तविकता जानने आया हूँ।

लाल—ऐसी कौन सी बात है जिसे प्राणनाथ प्रभु नहीं जानते ?

प्राण—सुना है, महाराज चंपतराय दारा के विरुद्ध औरंगजेब की ओर से युद्ध करने गए हैं। क्या यह ठीक है ?

लाल— हाँ ।

प्राण—निरपराध बुंदेलों का रक्त क्या इतना सस्ता है कि

उसे व्यर्थ ही मुग़ल-वंश की लोलुप साम्राज्य-लिप्सा को पिला दिया जाय ?

लाल—आप जानते हैं प्राणनाथजी, महाराज ने तलवार के ज़ोर से कंधार-प्रदेश मुग़लों को जीत कर दिया था, जिसके बदले शाहजहाँ ने हमें कोंच की जागीर दी थी। किंतु पहाड़सिंह ने दारा से मिलकर उसे अपने लिए माँग लिया था।

प्राण—हाँ, यह मैं जानता हूँ।

लाल—उस दारा से बदला लेने का यह अच्छा अवसर है, यह सोचकर महाराज.......

प्राण—बहन, स्पष्ट कथन के लिए मुझे क्षमा करें! यह समय व्यक्तिगत प्रतिशोध लेने का नहीं है। महाराज, मरीचिका के पीछे दौड़ रहे हैं। यह निश्चित है कि उन्हें शीघ्र ही लौटना पड़ेगा, किंतु इस बीच बुंदेलों की स्वातंत्र्य-साधना में जो व्याघात पड़ जायगा, उसकी पूर्ति कैसे होगी? उसका उत्तरदायित्व किस पर होगा?

लाल—मैंने स्वयं उन्हें मुगल-राज-वंश के घरेलू झगड़ों में पड़ने से रोका था, किंतु, अखिर महाराज भी मनुष्य हैं। पहाड़सिंह की पत्नी हीरादेवी भीमजी के प्राण लेकर ही संतुष्ट होजाती तो शायद मैं महाराज को उसे क्षमा कर देने को राज़ी कर लेती! किंतु हीरादेवी के हृदय में ईर्षा ने हिंसा के जो बीज बो दिए थे, वे बड़े भारी विटप का रूप धारण कर चुके हैं। एक रात को जब महाराज एक जंगली डेरे में सो रहे थे, उसने एक आदमी को उस

अँधेरी रात में काले कपड़े पहना कर उनकी हत्या करने भेजा। असावधानी से डेरे में घुसते समय उससे ज़रा आहट हो गई। महाराज ने उसी अंधकार में शब्द को लक्ष्य कर वाण मारा। एक चीख के साथ वह नराधम धम से धराशायी हो गया।

प्राण—मैं यह जानता हूँ, वहन।

लाल—अपना यह पड्यंत्र असफल पाकर हीरादेवी ने पहाड़सिंह को दारा की शरण लेने को प्रेरित किया और हमारी कोंच की जागीर छिनवा ली। पहाड़सिंह तो अव इस दुनिया से चल वसे हैं, किंतु उनकी मृत्यु से सर्पिणी हीरादेवी और भी स्वच्छंद होकर हमें मिट्टी में मिला देने का यत्न कर रही है। अब अवसर आया है, हीरादेवी और दारा दोनों से प्रतिशोध लेने का।

प्राण—किंतु इससे बुंदेलखंड को क्या लाभ होगा? औरंगज़ेव ने महाराज को कोंच की जागीर वापस दे भी दी तब भी बुंदेलखण्ड के कंधों पर से तो गुलामी का जुआ न उतरेगा। हीरादेवी पथ-भ्रष्ट है। वह मुग़लों के चरण चूमकर राज्य-विस्तार और अपने राज्य की रक्षा करना चाह सकती है, किंतु बुंदेलखण्ड की जनता यह कभी नहीं सहन कर सकती कि चंपतरायजी के हृदय में यह लोभ उत्पन्न हो।

लाल—लोभ! महाराज चंपतराय को लोभ! आप यह क्या कहते हैं प्राणनाथ प्रभु! जो कष्ट-सहन उनका नित्य का जीवन वना हुआ है, उसका उदाहरण क्या आप मेवाड़ के इतिहास में भी वता सकते हैं? इतने कष्ट सहन के पश्चात् भी जनता कहती है

कि महाराज के हृदय में लोभ उत्पन्न हुआ है ! यह कृतघ्नता ···।

प्राण—उत्तेजित न हो बहन। जनता वास्तव में निष्ठुर और कृतघ्न होती है। वह अपने नेता को आत्म-त्याग के उच्चतम शिखर से एक कदम भी नीचे उतरते देख कर, अपने हाथों अविश्वास के गहरे गर्त में ढकेल देती है। इसीलिए बहन, नेतृत्व हाथ में लेना तलवार की धार पर चलना है।

लाल—किंतु आप तो महाराज को भली भाँति पहचानते हैं।

प्राण—तभी तो मैं विस्मित हूँ। महाराज का स्थान दिल्ली का दरबार नहीं, विंध्याचल की चट्टानें हैं। उन्हें परावलंबी बन कर औरंगज़ेब की कृपा से कोंच की जागीर नहीं प्राप्त करनी है, बल्कि बाहु-बल से, तलवार की ताक़त से, स्वावलंबन के पथ पर चल कर संपूर्ण बुंदेलखंड को स्वतंत्र करना है।

लाल—आप सत्य कहते हैं प्राणनाथ प्रभु ! हम दुर्बल मनुष्य राग-द्वेष से ऊपर रहकर कर्म करना नहीं जानते, अपने अभिमान के आगे जाति के अभिमान को तुच्छ समझ बैठते हैं। किंतु, समय आने दो, प्राणनाथजी, इस भूल का अवश्य संशोधन होगा। मैं आज ही दिल्ली की ओर प्रस्थान करती हूँ।

प्राण— तुम महाराज को लौटा लाओ, बहन ! हीरादेवी जैसी हस्तियाँ तुच्छ नर-पशुता की प्रतिमूर्त्ति हैं—उनके साथ स्वतंत्रता के अमर सैनानी चंपतराय की कैसी स्पर्धा ! वे लोग तो अपनी नीचता के भार से स्वयं दबे जा रहे हैं, उनकी धन-संपत्ति उन

के लिए विधाता का अभिशाप है, उन्हें विश्व का साम्राज्य उपलब्ध हो जावे और महाराज चंपतराय मार्ग के भिखारी बने रहें, फिर भी वे जाति-द्रोही और गुलाम उनके चरणों में बैठने का गौरव नहीं पा सकते।

लाल—विश्वास रखो प्राणनाथजी, लालकुँवरि के जीते जी बुंदेलों की पताका नीची न होगी। चलिए, आप अब भोजन कर के ही यहाँ से जा सकेंगे।

(दोनों का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

छठा दृश्य

(दिल्ली का राज-महल। महाराज चंपतराय और औरंगज़ेब घूमते हुए बातें कर रहे हैं]

औरंगज़ेब—महाराज चंपतराय,आज औरंगजेब,जो तख्तेताऊस पर बैठ सका है, वह आपकी बहादुरी ही का नतीजा है। मैं ज़िंदगी भर आपका अहसानमंद रहूँगा। दारा ने वाक़ई आपके साथ जुल्म किया था। इसकी उसे सज़ा मिल गई है। औरंगजेब किस तरह आपके अहसान का बदला.......

चंपतराय—अहसान का बदला !

औरंगज़ेब—हाँ, अहसान का बदला। मुझे वह दिन याद है—मेरा लश्कर चंबल के किनारे आकर ठिठक कर रुक गया

था। दारा ने पार जाने के सारे घाट रोक लिए थे। मेरे सारे मनसूबों पर पानी फिर गया था। तब आपने आकर कहा था—'शाहज़ादा औरंगज़ेब, चलिए मैं आपको ऐसे घाट से पार ले चलूँ जिसे दारा नहीं जानता।' उम्मीद की एक नई रोशनी आपने रोशन कर दी थी!

चंपतराय—बादशाह औरंगज़ेब, जंगल और पहाड़ ही हम बुंदेलों की सुख-सेज हैं। बुंदेलखंड और उसके आस-पास के जंगलों, पहाड़ों, नदियों के कछारों में कौन-सा ऐसा स्थान है जहाँ चंपतराय के पैर न पड़े हों? हमारे पास मुग़ल बादशाहत जैसे साधन तो हैं नहीं, ये दुर्गम वन ही हमारे गढ़ हैं। इन्हीं की सहायता से इतनी सदियों से बुंदेले आप लोगों से लोहा लेते रहे हैं।

औरंगज़ेब—मुझे उम्मीद है कि औरंगज़ेब के दोस्त बनकर अब आप चैन की ज़िंदगी बसर कर सकेंगे। आपकी कोंच की जागीर आपको वापस कर दी गई है। आपको बारह हज़ारी का मनसब भी दिया गया है। लेकिन, मेरे रास्ते में एक और काँटा रह गया है, उसे भी अगर आप अपनी जवाँमर्दी से दूर कर दें तो·····

चंपतराय—वह कौन है?

औरंगज़ेब—कमबख़्त शुजा। आप उसे दबाने के लिए बंगाल जाइए।

चंपतराय—यह न होगा बादशाह! दारा के विरुद्ध मेरे हृदय

में प्रतिहिंसा की आँधी उठ रही थी। यही मुझे विंध्याचल की चट्टानों से दिल्ली के दरबार में खींच लाई। किंतु, अब ऐसा जान पड़ता है कि मुझ से भूल हुई है, पाप बन पड़ा है। औरंगजेब, मुझे पाप के गर्त में और अधिक न उतारो। बुंदेलखंड के भूखे-नंगे, कातर और पीड़ित बंधु मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, मुझे वहाँ लौट जाने दो।

औरंग—मुग़ल-बादशाहत की हिफ़ाजत में बुंदेलखंड······

चंपतराय—किसी की हिफ़ाज़त में बुंदेलखंड ! आज ऐसे शब्द सुनकर भी मैं जी रहा हूँ ! यह मेरे पतन की पराकाष्ठा है ! औरंग-जेब, मैं तुम्हारा आदर करता हूँ, इसलिए नहीं कि तुम दिल्ली के बादशाह हो, बल्कि इसलिए कि तुम वीर हो। जहाँ दूसरे शाह-जादों ने मख़मली गद्दे-तकियों और मसनदों पर जिंदगी बिताई, नाच और गानों की तरंगों में रात-दिन डूबे रहे, वहाँ तुमने बलख से लेकर दक्षिण के बीजापुर तक अपनी तलवार चलाई है। तुम सफल सेनापति हो, तुम में पहाड़ की भाँति सुस्थिर धैर्य है। तुम्हारी वीरता का आदर करके और तुम्हें दिल्ली के सिंहासन पर बैठाकर मैंने बुंदेलखंड की गुलामी की जंजीरों को और भी मज़बूत कर दिया है। प्रतिहिंसा की आँधी मुझे कहाँ खींच लाई !

औरंगज़ेब—पछतावा हो रहा है, राजा साहब ! अभी तो तुम कहते थे कि तुम मेरी इज्ज़त करते हो !

चंपतराय—आदर करता हूँ तुम्हारी वीरता का, घृणा करता हूँ तुम्हारे कपट से, तुम्हारी निष्ठुरता से। मेरे हृदय में दाग के

प्रति इतना क्रोध था कि अवसर पाने पर उसका सिर धड़ से अलग कर देता; किंतु जिस दिन वह गिरफ़्तार करके मैली और भद्दी हथिनी की पीठ पर नंगे हौदे पर बिठाया गया, उसके पास सिपहर शिकोह बैठा था; दोनों केपीछे एक राक्षस की सूरत का गुलाम नंगी तलवार हाथ में लिए पहरे पर तैनात था; चारों ओर नंगी तलवारों का सख़्त पहरा था; दारा शरीर पर मैले और मोटे कपड़े पहने था; वह करुणाजनक जुलूस लाहौरी दरवाज़े से शहर में घुसा; ज़ालिमों ने दोपहर की धूप में दारा की शहर में प्रदर्शिनी कराई और वह अत्याचार मेरे कारण संभव हो सका था; (आँखों में आँसू आजाते हैं) उस दृश्य को देखकर जी चाहा कि अपना गला घोंट लूँ।

औरंगज़ेब—उस बदमाश के साथ इतनी हमदर्दी!

चंपतराय—बदमाश! दारा बदमाश! उस जैसा महान्, उस जैसा उदार-व्यक्ति मुग़ल ख़ानदान में न कभी पैदा हुआ और न होगा। उसकी सहृदयता की कितनी कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। जब सौभाग्य के दिनों में वह बाज़ार में निकलता था, तो जो भिखारी भीख माँगता था उसकी झोली में कुछ न कुछ पड़ ही जाता था। उस दिन भी, जब बदनसीबी की बेड़ियों में जकड़े हुए दारा के जुलूस पर मुग़ल ख़ानदान की ग़ैरत आठ-आठ आँसू रो रही थी, एक भिखारी ने उसकी हथिनी के पास आकर कहा, 'ऐ दारा पहले तो जब तू निकलता था, तब मुझे कुछ न कुछ देता था, पर अब तेरे पास देने को कुछ नहीं है।' दारा ने उसकी ओर आँख

उठाई। एक ठंडी साँस ली और कंधे पर से दुपट्टा उतार कर उसी ओर फेंक दिया। दारा की आँखें फिर नीची होगईं। सारी जनता के मुँह से 'वाह-वाह' की ध्वनि के साथ-साथ दुःख और खेद की चीख़ निकल पड़ी और आँखों से आँसू बह चले। (आँखों में आँसू भर आते हैं)

औरंगज़ेब—चंपतराय! दुश्मन के लिए तुम्हारी आँखों में आँसू!

चंपतराय—रोते-रोते मेरी आँखें फूट जायँ, तब भी हृदय के पश्चात्ताप की ज्वाला शांत न होगी। जब दरबार में दारा के कटे हुए सिर को तुमने मनुष्यता से च्युत होकर अपने पैर से ठुकराया था, तब जी चाहा था तुम्हारे सिर को भी काटकर उसी तरह से पैरों से ठुकराऊँ।

औरंगज़ेब—चंपतराय, होश में आओ! क्या तुम भूल गए कि तुम किससे बातें कर रहे हो? यह महेवा नहीं, दिल्ली है। चोबदार! चोबदार!!

(चोबदार का प्रवेश)

चोबदार—(कोर्निश करके) हुक्म बंदापरवर!

औरंगज़ेब—रणदूलहखाँ को भेजो। (चोबदार का प्रस्थान) चंपतराय याद रक्खो औरंगज़ेब की शान में ऐसे अल्फाज़ कह कर तुम वापस बुंदेलखंड नहीं जा सकते।

(सहसा लालकुँवरि का प्रवेश)

लाल—महेवा के महाराज को गिरफ्तार करने की शक्ति किस में है?

चंपतराय—तुम यहाँ, लाल !

लाल—हाँ, मैं यहाँ, महाराज ! जिसने समर-भूमि में आपके साथ रहकर, सगर्भ अवस्था में भी घोड़े की पीठ पर सवार हो कर शत्रु के सिरों के साथ खेल खेला है; वह दिल्ली के दरबार में औरंगज़ेब के सामने आने में क्या संकोच करती ! भौंचक्के से क्या देखते हो, औरंगज़ेब ! अपना मनसब और जागीर आप अपने पास रखिए। ओड़छे में उसके लिए हाथ पसारने वालों की कमी नहीं। किंतु, महेवावाले दूसरी धातु के बने हैं। जो व्यक्ति तलवार के ज़ोर से औरंगज़ेब को बादशाह बना सकते हैं, वे अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा भी कर सकते हैं। चलिए, महाराज, विंध्यवासिनी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।

(हाथ पकड़ कर चंपतराय को ले चलती हैं, रणदूलहखाँ का प्रवेश)

औरंगज़ेब—गिरफ़तार करो।

(रणदूलहखाँ रास्ता रोकता है)

लाल—सावधान (तलवार खींचती हैं, सब स्तंभित रह जाते हैं। लालकुँवरि चंपतराय को लेकर चली जाती हैं)

औरंग—कैसा हैरतअंगेज़ नज़ारा था। रणदूलहखाँ मेरे साथ आओ।

(दोनों का प्रस्थान)

[पट-परिवर्त्तन]

उठाई। एक ठंडी साँस ली और कंधे पर से दुपट्टा उतार कर उसी ओर फेंक दिया। दारा की आँखें फिर नीची होगई। सारी जनता के मुँह से 'वाह-वाह' की ध्वनि के साथ-साथ दुःख और खेद की चीख़ निकल पड़ी और आँखों से आँसू वह चले। (आँखों में आँसू भर आते हैं)

औरंगज़ेब—चंपतराय! दुश्मन के लिए तुम्हारी आँखों में आँसू!

चंपतराय—रोते-रोते मेरी आँखें फूट जायँ, तब भी हृदय के पश्चात्ताप की ज्वाला शांत न होगी। जब दरबार में दारा के कटे हुए सिर को तुमने मनुष्यता से च्युत होकर अपने पैर से ठुकराया था, तब जी चाहा था तुम्हारे सिर को भी काटकर उसी तरह से पैरों से ठुकराऊँ।

औरंगज़ेब—चंपतराय, होश में आओ! क्या तुम भूल गए कि तुम किससे बातें कर रहे हो? यह महेवा नहीं, दिल्ली है। चोबदार! चोबदार!!

(चोबदार का प्रवेश)

चोबदार—(कोर्निश करके) हुक्म बंदापरवर!

औरंगज़ेब—रणदूलहखाँ को भेजो। (चोबदार का प्रस्थान) चंपतराय याद रक्खो औरंगज़ेब की शान में ऐसे अल्फाज़ कह कर तुम वापस बुंदेलखंड नहीं जा सकते।

(सहसा लालकुँवरि का प्रवेश)

लाल—महेवा के महाराज को गिरफ़्तार करने की शक्ति किस में है?

चंपतराय—तुम यहाँ, लाल !

लाल—हाँ, मैं यहाँ, महाराज ! जिसने समर-भूमि में आपके साथ रहकर, सगर्भ अवस्था में भी घोड़े की पीठ पर सवार हो कर शत्रु के सिरों के साथ खेल खेला है; वह दिल्ली के दरबार में औरंगज़ेब के सामने आने में क्या संकोच करती ! भौंचक्के से क्या देखते हो, औरंगज़ेब ! अपना मनसब और जागीर आप अपने पास रखिए। ओड़छे में उसके लिए हाथ पसारने वालों की कमी नहीं। किंतु, महेवावाले दूसरी धातु के बने हैं। जो व्यक्ति तलवार के ज़ोर से औरंगज़ेब को बादशाह बना सकते हैं, वे अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा भी कर सकते हैं। चलिए, महाराज, विंध्यवासिनी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।

(हाथ पकड़ कर चंपतराय को ले चलती हैं, रणदूलहखाँ का प्रवेश)

औरंगज़ेब—गिरफ़तार करो।

(रणदूलहखाँ रास्ता रोकता है)

लाल—सावधान (तलवार खींचती हैं, सब स्तंभित रह जाते हैं। लालकुँवरि चंपतराय को लेकर चली जाती हैं)

औरंग—कैसा हैरतअंगेज नजारा था। रणदूलहखाँ मेरे साथ आओ।

(दोनों का प्रस्थान)

[पट-परिवर्त्तन]

सातवाँ दृश्य

[स्थान—ओड़छा का राजमहल। हीरादेवी अकेली]

हीरादेवी—रस्सी जल गई, पर ऐंठन नहीं गई। लालकुँवरि और चंपतराय को अपनी दुर्दशा पर भी गर्व है। उन्होंने स्वर्गीय महाराज को ओड़छा की गद्दी हस्तगत करने में ज़रा-सी सहायता क्या दे दी, मानों हमें मोल ले लिया! चाहते थे कि हम उनके अहसान के बोझ से सदा दबे रहें! किंतु उन्हें अब मालूम होगा कि हीरादेवी के तन-मन किस धातु से बने हैं।

(देवीसिंह का प्रवेश)

देवीसिंह—चरणवंदना, भाभी!

हीरादेवी—आओ लाला देवीसिंह! क्या समाचार हैं?

देवीसिंह—समाचार क्या हैं! चंपतराय अपनी करनी का फल पा रहे हैं। जंगल-जंगल मारे-मारे फिर रहे है। औरंगज़ेब से भला चंपतराय का क्या मुकाबला!

हीरादेवी—तिस पर मुग़लों को ओड़छा, दतिया और चँदेरी की सहायता प्राप्त है। ओड़छा और महेवा का जब तक मेल रहा चंपतराय चंपतराय थे। अब वे रास्ते के भिखारी हैं।

(शुभकरण का प्रवेश)

शुभकरण—रास्ते के भिखारी नहीं, दिलों के राजा हैं। हीरादेवी, तुम अपने आपको किस बात में बड़ा समझती हो? औरंगज़ेब की कृपा से तुम्हें चम्पतराय की कोंच की जागीर क्या मिल गई, तुम तो फूली ही नहीं समाती। देश के शत्रुओं की छत्र-छाया में रह कर......

हीरादेवी—शुभकरणजी, आज आप को हुआ क्या है? चम्पतराय की जो दुर्दशा आज हो रही है, उसमें आप का भी हाथ है। आपने क्यों मुग़ल-सेना का साथ दिया?

शुभकरण—यह युद्ध के खुले मैदान की बातें हैं; उन्हें, माया-मयी नारी, तुम न समझोगी। चम्पतराय की वीरता का अभिमान भंग करने की मेरी बड़ी प्रबल और पुरानी इच्छा थी, वह आज पूरी हुई। किंतु मैं देखता हूँ कि चम्पतराय पराजित हो कर भी विजयी हुए हैं और हम विजयी हो कर भी पराजित हैं। मैं चाहता था कि केवल एक बार संकटों से त्रस्त होकर चम्पतराय शुभकरण के आगे सहायता की भीख माँगते, पर वह वीर बुंदेला सब कुछ खो कर भी धैर्य का धनी बना हुआ है। उसकी महिमा अजेय है, स्पर्द्धा की सीमा से परे है। युग-युग तक तप करने पर भी हम उनके चरणों में बैठने की योग्यता नहीं पा सकते।

(एक सैनिक का प्रवेश)

हीरादेव—कौन? भवानीसिंह!

सैनिक—(झुक कर नमस्कार करके), हाँ महारानीजी!

हीरादेवी—चम्पतराय के क्या समाचार हैं ?

सैनिक—उन की स्थिति का क्या वर्णन करूँ, महारानी ! शत्रु उनका सावधानी से पीछा कर रहे हैं। उन्हें दम लेने को भी अवकाश नहीं। जहाँ सुवह डेरा डालते हैं, वहाँ रात नहीं विता सकते। कई वार तो उन्हें भोजन भी नसीव नहीं होता। शिकारी से अनुगत हरिण की भाँति कुलाँचें मारते हुए वे भाग रहे हैं। दूवरी और दो आपाढ़ वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। इधर शत्रु सिर पर हैं, उधर उन्हें वीमारी ने आ घेरा है।

शुभकरण—फिर भी वह साहस नहीं छोड़ते। क्यों न ?

सैनिक—हाँ महाराज ! साहस छोड़ना तो उन्होंने सीखा ही नहीं है। इन सव आपत्तियों में उनका एकमात्र सहारा है उनकी रानी लालकुँवरि। इस वीरांगना ने नगर में या वन में, विजय में या पराजय में, कहीं भी अपने पति का साथ नहीं छोड़ा। छाया की भाँति सदा उनके साथ ही रही। शेष सव साथी विछुड़ गये। अपनों ने भी अपनापन विसार दिया। छत्रसाल को वहन के पास आश्रय लेने भेजा था; वह उस समय तीन दिन का भूखा था, परन्तु वहन ने शाही सेना के डर से तीन दिन के भूखे भाई को भोजन नहीं दिया, शरण नहीं दी !

शुभकरण—उफ़ ! अव भी तुम्हारी आत्मा को शांति नहीं मिली, हीरादेवी !

हीरादेवी—(सैनिक से) चपतराय अव कहाँ हैं ?

सैनिक—सहरा के जागीरदार इन्द्रमणि के पास। वह दृश्य

भी मैं नहीं भूल सकता; जब चंपतराय सहरा के जंगल में डेरा डाले विश्राम कर रहे थे, और साहबसिंह धँधेरा २०० धँधेरे सिपाहियों को लेकर उनके स्वागत को गया था। अपनी ओर फ़ौज आती देख, चंपतराय ने समझा कि शत्रु आ पहुँचे हैं। रोग-ग्रस्त चंपतराय में उठने की शक्ति न थी, फिर भी वह घबरा कर उठ बैठे। धनुष की प्रत्यंचा खींची, पर बाहुओं में ताक़त न थी। उसी समय लालकुँवरि कटार निकाल कर पति के सामने खड़ी हो गईं। उन्होंने आँखों में अँगारे भर कर धँधेरे सिपाहियों की तरफ़ देखा और रणचंडी की तरह ललकार कर कहा—"जब तक मेरे प्राणों में प्राण हैं, तुम महाराज को छू न सकोगे।" वह दृश्य अभूतपूर्व था!

शुभकरण—हीरादेवी, ज़रा अपनी तुलना उस वीरांगना से करो!

हीरादेवी—महाराज शुभकरण जी, मैं आज तक आपके स्वभाव को नहीं समझ सकी। चंपतराय और लालकुँवरि के प्रति इतनी श्रद्धा रखकर भी आपने औरंगज़ेब का साथ क्यों दिया?

शुभकरण—केवल अभिमान, ईर्षा और हीरादेवी को साथ देने के वचन के कारण। मेरा कार्य अब समाप्त हो गया। शुभकरण ने देख लिया कि वह चंपतराय से बाहु-बल में कम नहीं है और इसका उसे संतोष है। किंतु दुर्दशा-ग्रस्त चंपतराय को और कष्ट देना मैं नहीं चाहता।

हीरादेवी—यह आपकी भूल है। सारा बुंदेलखंड उसके लिए दीवाना है। आज उन्हें खाली छोड़ देंगे तो कल सेना एकत्र कर वह आप को, हमें और किसी को भी न छोड़ेंगे।

देवीसिंह—आप ठीक कहती हैं।

शुभकरण—दो गठकतरों का यह कैसा सुंदर सम्मिलन है! महाराज देवीसिंह, एक दिन वह था जब आपने मुग़ल बादशाह की कृपा से ओड़छे की गद्दी हस्तगत की थी। और जिन चंपतराय ने पहाड़सिंह को आपसे राज्य लेने में सहायता दी थी, उनकी पत्नी आज अपने शत्रु देवीसिंह को अपने त्राता के विरुद्ध अपना रक्षक बना रही हैं। आज भक्षक ही रक्षक बने हैं। शुभकरण का इस कुटिल सभा से अब सदा के लिए प्रस्थान है।

(प्रस्थान)

हीरादेवी—यही समय है कि हम चंपतराय को समाप्त कर सकते हैं। चलिए आगे के कार्य-क्रम पर विचार कर लिया जाय।

(दोनों का प्रस्थान)

(पट-परिवर्त्तन)

चंपतराय—किंतु········

लाल—किंतु शत्रुओं ने हमें घेर लिया है।

चंपतराय—मेरा धनुष (उठकर डोली में से धनुष उठाते हैं और उस पर बाण चढ़ाते हैं, किंतु ताक़त न होने से धनुष की डोरी नहीं खिंचती) लाल !

लाल—महाराज !

चंपतराय—अब कोई आशा नहीं। इन हाथों में अब ज़रा भी ताक़त नहीं रही। चुनौती सामने है, पर बुंदेलों का शौर्य आज पिंजरबद्ध सिंह की तरह तड़प-तड़प कर रह जाने के सिवा कुछ नहीं कर सकता ! लालकुँवरि, आज विधाता मुझे बिलकुल भूल गया। किंतु कोई परवाह नहीं, तुम तो मेरे साथ हो ! देखो लाल, आज बुंदेलों की मर्यादा संकट में है, आज तुम ही मेरी लाज रख सकती हो !

लाल—आज्ञा दीजिए महाराज, मैं प्राण देकर भी आपकी आन को आँच न आने दूँगी।

चंपतराय—मेरी लाल ! (आँखों में आँसू आते हैं) महेबा की इज़्ज़त !!

लाल—आपका क्या आशय है ? मेरे शरीर को शत्रु हाथ लगावेंगे, यही आशंका है न महाराज को ? लीजिए महाराज, मैं अपने हाथ से अपने पेट में छुरी चुभा कर अभी आपके चरणों में प्राण-विसर्जन किये देती हूँ। ऐसा सौभाग्य किस स्त्री को मिलता है !

(एक तीर महाराज के कान के पास से गुज़रता है)

चंपतराय—शत्रु हमारे बहुत निकट आ गये हैं; अब देर न करो, लाल !

लाल—(तलवार खींचती हुई) मैंने कुमारी-अवस्था में जो बात कही थी, वह सत्य होकर ही रहेगी, यह कौन जानता था ! पति की आन रखने के लिए आज मुझे उनके प्राण लेने पड़ रहे हैं ! स्वामी, मुझे एक बार अपने चरण छू लेने दो।

(चरण छूती हैं—आँखों में आँसू आ जाते हैं)

चंपत—प्रिये ! यह दुर्बलता क्यों ? क्षत्राणियों का हृदय तो वज्र का होता है ! उठाओ तलवार !

लालकुँअरि—(चंपतराय पर तलवार का वार करती है) बुंदेलखंड की स्वाधीनता का एक अध्याय यहाँ समाप्त होता है। मैं भी अब इस जगत् से विदा लेती हूँ। (पेट में तलवार भोंक कर गिर पड़ती हैं। सहसा प्राणनाथ प्रभु का प्रवेश)

प्राण—कौन महाराज चंपतराय और लालकुँवरि !

लाल—(टूटे हुए स्वर में) बहुत देर में आए, प्राणनाथ प्रभु ! सब समाप्त हो गया ! केवल एक कहानी रह जायगी, जिसे बुंदेलों को सुना-सुना कर उन्हें देश की स्वाधीनता के लिए पागल बनाते रहना। छत्रसाल सहरा में है, उससे कह देना कि तुम्हें सब प्रकार साधनहीन, भिखारी बनाकर माँ और बाप दुनिया से चल बसे ! माँ-बाप की मृत्यु का प्रतिशोध शत्रु से लेना न भूल जाना। (मृत्यु)

(नेपथ्य-में गान)

यात्री, हिम्मत हार न जाना !
कंटक-मय है राह तुम्हारी,
सिर पर वज्र बरसते भारी,
बनी विरोधी दुनिया सारी,
साहस का दीपक न बुझाना !
तुम्हें प्रलोभन फुसलावेंगे,
दमन-चक्र दलने आवेंगे,
भ्रम उलटे पथ पर लावेंगे,
पर, तुम लक्ष्य न कभी भुलाना !
यात्री, हिम्मत हार न जाना !!

(गाते-गाते विजया और प्राणनाथ प्रभु का प्रवेश छत्रसाल पास जाकर प्रणाम करते हैं)

प्राणनाथ—कुमार छत्रसाल ! यशस्वी हो !

छत्रसाल—आप कहाँ से आ रहे हैं गुरुदेव !

प्राणनाथ—चंपतरायजी और बहन लालकुँवरि के पास से।

छत्रसाल—उनके क्या समाचार हैं ?

(प्राणनाथ की आँखों में आँसू भर आते हैं)

छत्रसाल—यह क्या गुरुदेव ! आपकी आँखों में आँसू ! माया मोह के बन्धनों के ऊपर रहनेवाले संन्यासी की आँखों में आँसू !

प्राणनाथ—क्या कहूँ भैया ! आज विंध्याचल की चट्टानें

प्राणनाथ—यह कायरता तो है ही कुमार, मूर्खता भी है। माँ चली गई तो क्या हुआ, जननी-जन्मभूमि तो है। वह तो माँ की भी माँ है, पिता की भी माँ है, तुम्हारी भी माँ है, और कोटि-कोटि देश-वासियों की भी माँ है! क्या उसके प्रति तुम्हारा कोई कर्त्तव्य नहीं है? क्या उसकी दासता की शृंखलाएँ तुम्हारे पौरुष को चुनौती नहीं देती? क्या वीर चंपतराय के पुत्र का रक्त इतना शीतल हो गया है?

छत्रसाल—(कटार म्यान में करके) क्षमा कीजिए गुरुदेव! मुझ से भूल हुई। आदेश कीजिए मुझे क्या करना चाहिए।

प्राणनाथ—तुम्हारी माँ तुम्हारे लिए एक आज्ञा दे गई हैं। उस आज्ञा का पालन करना तुम्हारा धर्म है।

छत्रसाल—वह क्या गुरुदेव!

प्राणनाथ—वे कह गई हैं कि माँ बाप की मृत्यु का प्रतिशोध शत्रु से लेना, बुंदेलखंड की स्वातंत्र्य-साधना का दीपक बुझने न देना। बोलो, छत्रसाल अब तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है? तुम्हारी क्या इच्छा है?

छत्रसाल—इच्छा और कर्तव्य! माँ की आज्ञा के बाद इच्छा और कर्तव्य का प्रश्न व्यर्थ है। धन और साधन से विहीन तथा साथी-संगियों से वंचित यह छत्रसाल, माँ की आज्ञा पर अपने प्राणों को उसी तरह चढ़ा देगा, जिस तरह शिखा पर शलभ बलिदान हो जाते हैं। मैं जानता हूँ कि लक्ष्य-सिद्धि असंभव है,

गुलामी ने लोगों के हृदयों में घर कर लिया है। बुंदेलखंड के सभी राजा-महाराजा मुगलों के चरण चूमते हैं, फिर भी मैं माँ की आज्ञा और गुरुदेव के आदेश पर अपने जीवन की आहुति देकर ऋणमुक्त होने को तत्पर हूँ।

प्राणनाथ—इतना निराश होने की आवश्यकता नहीं। राजा-महाराजाओं की बात छोड़ो। उनकी सहायता के बिना भी स्वाधीनता-संग्राम के लिए वातावरण अनुपयुक्त नज़र नहीं आता। चंबल, बेतवा और नर्मदा के बीच का प्रांत आज भीतर ही भीतर अशांति की आग से जल रहा है। गरीब किसान और बाँके बुंदेले तलवारों को म्यान से बाहर करने के लिए बेचैन हैं। यदि चंपतराय कुछ दिन और जीवित रहते, यदि रोग ने उन्हें विवश न कर दिया होता, तो वे बुंदेलखंड की तस्वीर ही बदल देते। उनका बलिदान आज भी बुंदेलों की आँखों में महाकाल की ज्वाला प्रज्वलित कर रहा है। कुमार! तुम मैदान में आओ! लोग तुम में लालकुँवरि और चंपतराय की आत्माओं का सम्मिलित तेज पाकर तुम्हारे चरणों पर अपने जीवन चढ़ाने को प्रस्तुत हो जायँगे।

छत्रसाल—गुरुदेव! जब मेरा जन्म भी न हुआ था, तब मेरे बड़े भाई, चौदह वर्ष के सारवाहन ने शत्रु से लोहा लिया था, पिताजी ने भी बचपन में ही देश भर में अपनी तलवार की धूम मचा रखी थी। आज मेरा भी बचपन यौवन के किनारे पर आने की प्रतीक्षा में है। माँ की आज्ञा ही नहीं, अंतःकरण की

प्रेरणा से भी पुरखों के इस अधूरे कार्य को मुझे अपने कंधों पर लेना ही होगा। मेरी स्थिति अद्भुत है। पिताजी को पुरखों की जागीर तो प्राप्त थी, यह छत्रसाल तो आज दाने-दाने को मोहताज है, फिर भी वह बुंदेलखंड की स्वाधीनता का स्वप्न देख रहा है। मुझे विश्वास है कि पिताजी और माताजी का जीवन मेरे प्राणों में सदा स्फूर्ति का ज्वार उठाता रहेगा। गुरुदेव, मैं प्रार्थना करता हूँ कि आपका आशीर्वाद भी मुझ पर बना रहे।

प्राणनाथ—तुम बुंदेलखंड को स्वतंत्र करने में अवश्य सफल होगे, कुमार! मेरा यह हार्दिक आशीर्वाद है।

छत्रसाल—ये बहन कौन हैं?

प्राणनाथ—मेरी एक शिष्या। इससे अधिक परिचय की अभी आवश्यकता नहीं।

छत्रसाल—बहन जो गीत तुम अभी गा रही थीं, उसे एक बार फिर गाओ तो।

विजया—(गान)

यात्री, हिम्मत हार न जाना।

कंटकमय है राह तुम्हारी,
सिर पर वज्र बरसते भारी,
बनी विरोधी दुनिया सारी,

साहस का दीपक न बुझाना!
यात्री, हिम्मत हार न जाना।

तुम्हें प्रलोभन फुसलावेंगे,
दमन-चक्र दलने आवेंगे,
भ्रम उलटे पथ पर लावेंगे,
पर, तुम लक्ष्य न कभी भुलाना !
यात्री, हिम्मत हार न जाना !!

(सब का प्रस्थान, विजया जाते जाते गीत गाती है)

[पट-परिवर्त्तन]

दूसरा दृश्य

[स्थान—आगरे के राज-महल की एक वाटिका। समय रात्रि के दस बजे। चाँदनी रात में एक संगमरमर के चबूतरे पर बैठी ज़ेबुन्निसा गा रही है]

ज़ेबुन्निसा—(गान)

दिल नहीं लगता लगाये !
रात आती है जहाँ में,
चैन की चादर बिछाती,
नींद के आगोश में जब
दर्द दुनिया है भुलाती,

एक सपने-सी, नशे-सी,
तब किसी की याद आती !
कौन, इस घायल जिगर का
ज़ख्म जाने,—पास आये !

दिल नहीं लगता लगाये !

दामनों में जब घटाएँ
हैं समंदर बाँध लातीं ,
एक तीखी बात बिजली-
सी अचानक कौंध जाती ,
जब गुलों के गाल छूकर
है हवा इस ओर आती,
एक काँटा-सा कसकता; दिल-
किसी को क्या बताये !

दिल नहीं लगता लगाये !

दुनिया की नज़र में मुझे किस बात की कमी है ? फिर भी ऐसा क्यों जान पड़ता है कि मुझ-सा कंगाल कोई नहीं है। मैं बादशाहज़ादी हूँ—दुनिया के सब से बड़े बादशाह की लड़की हूँ, फिर भी दिल से एक हूक-सी उठकर कहती है कि मैं राह के भिखारी से भी बदतर हूँ। सोने के पिंजरे में जैसे किसी ने मैना को बंद कर दिया हो ! इस वीरान ज़िंदगी के लिए कोई सहारा ही नहीं रह गया है। वह दिन भुलाये नहीं भूलता, जब मैंने [ब]हादुर शिवाजी को देखा था, जब मेरे दिल में पहली बार तूफ़ान

बेजान मूरतें हैं। ख़ानदान के अदब-क़ायदों ने हमारी हरएक हरकत को बाँध रखा है। मुझे ताज्जुब है ज़ेबुन्निसा, कि मैं इतने दिन जी कैसे सकी। मैं उसी दिन क्यों न मर गई, जिस दिन सर पर से अब्बाजान का मुहब्बत से भरा हुआ साया उठ गया। वह देखो सामने, वे अपनी मुहब्बत से पत्थरों में जान फूँक गये हैं। वह ताजमहल क्या कह रहा है? (आँखों में आँसू)

ज़ेबु—तुम रो रही हो फूफी !

जहा—बेटी, बूढ़ी आँखों के आँसू भी ख़ूबसूरत नहीं मालूम होते, लेकिन बूढ़ों के भी दिल तो होता ही है; और दुखी दिल के लिए आँसुओं के सिवा सहारा ही क्या है? तुम्हीं बताओ ज़ेबुन्निसा और क्या सहारा है?

ज़ेबु—शायरी और संगीत........

जहा—तुम ठीक कहती हो। शायरी और संगीत दिल के आँसू हैं, दिल का रोना हैं। जो मुहब्बत और दर्द से नावाकिफ़ हैं उनकी आँखों में आँसू, दिल में शायरी और गले में संगीत नहीं होता। यह सामने जो ताजमहल मुसकरा रहा है वह भी एक शायरी है, दर्द से भरा हुआ एक तराना है, कभी न सूखने वाली आँसू की एक बूँद है। अच्छा ज़ेबुन्निसा, तुम अभी जो गीत रही थीं, उसे फिर तो गाओ।

ज़ेबुन्निसा—(गाती है)

कि क्या तुम हमेशा यही थे ! क्या तुम कभी इन्सान न थे ? क्या तुम कभी इन्सान न बनोगे ?

औरंग—यानी······

जहा—यानी यही कि क्या तुम आदमी की तरह मुहब्बत करना, हँसना-रोना, गाना-बजाना बिलकुल भूल गये !

औरंग—इस्लाम के ख़ादिम को······

जहा—ग़लत बात है औरंगज़ेब ! तुम इस्लाम के ख़ादिम नहीं ख़ुदगरजी के ग़ुलाम हो। तुम्हारे दिल की हर एक धड़कन इसकी गवाही दे रही होगी ! तुम्हें वह दिन याद होगा—ज़रूर याद होगा—तुम ज़िंदगी भर उस दिन को न भूल सकोगे, जब हम मौसी से मिलने बुरहानपुर गये थे। मौसी की बाँदी हीराबाई को देखते ही तुम्हारा क्या हाल हुआ था ? हीराबाई बगीचे में आमों से लदे हुए एक पेड़ के पास जाकर आम तोड़ने लगी। उस आम तोड़ने में न जाने क्या बात थी कि जिससे तुम एकदम बेख़ुद और बेचैन हो गये ! बड़ी देर तक तुम बेहोश से उसी बगीचे में पड़े रहे।

औरंग—वह पागलपन था, बहन !

जहा—नहीं वह ज़िंदगी के एक कुदरती जज़्बे की सचाई थी, भैया ! वह इन्सानियत थी। तुम खाना-पीना छोड़ बैठे, तुम्हें दुनिया का शर्मोलिहाज़ न रहा। तब मौसी ने हीराबाई को तुम्हारे हवाले करके तुम्हारी जान बचाई थी। ज़िंदगी के उतार बैठे हुए तुम आज दूसरों को मुहब्बत की मंज़िल से गुज़रते

मेरे कुछ उसूल भी हैं। मुगल सल्तनत के सामने जो झुकने से इनकार करते हैं, उन पर मैं कभी रहम नहीं किया करता।

जहाँ—वे तुम से रहम की भीख माँगने ही कब आये हैं? जो सर कटाना जानते हैं, वे सर झुकाना नहीं सीख सकते।

औरंग—तुम अपने बहस-मुबाहिसे में कुछ सोचने थोड़े ही दोगी। अच्छा चलो, अब चल कर सो जाना चाहिए। रात भी काफी हो गई। इस मसले पर कल ग़ौर करेंगे।

(दोनों का प्रस्थान)

[पट-परिवर्त्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान—देवलवारा ग्राम का एक जंगल। अंगदराय और छत्रसाल का प्रवेश]

छत्रसाल—दादा अंगदराय, मेरी आकांक्षा को तुम अच्छी तरह समझ गये न?

अंगदराय—भाई छत्रसाल, तुम्हारी आकांक्षा सर्वथा तुम्हारे महत्त्व के अनुरूप है। उम्र में तुम से बड़ा होने पर भी, मैं तुम्हारा अनुयायी होने में गौरव समझता हूँ। हमें माताजी और पिताजी के खून का बदला तो लेना ही होगा। हम चंपतराय के बेटे हैं। परिस्थितियों के आगे चुपचाप सिर झुका देना हमारे की प्रकृति के विपरीत है।

अंगदराय—महाराज चंपतराय का पुत्र होते हुए भी ऐसा भाग्यवादी ! फिर तुमने क्या कहा ?

छत्रसाल—मैंने उन्हें वहुतेरा समझाया कि इस प्रकार निराश होकर बैठ रहने का कोई कारण नहीं, किंतु वह टस से मस न हुए।

अंगदराय—कोई चिंता नहीं भैया छत्र ! अंगद और छत्रसाल अकेले ही महाकाल से भिड़ने को तैयार हैं। सफलता न मिले तो न सही, किंतु पिताजी की भाँति एक उज्ज्वल आदर्श के लिए अपने प्राण समर्पित करने का आनन्द तो हम पा ही सकेंगे।

छत्रसाल—हाँ, भैया मैं भी यही समझता हूँ कि कर्म करना हमारा धर्म है। विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करना ही पौरुष है। आज हमारे पास कल को खाने के लिए भी ठिकाना नहीं है, आज संपूर्ण बुंदेलखण्ड में, बुंदेलखण्ड की स्वाधीनता के लिए प्राण देने वाले चंपतराय के पुत्र को आश्रय देने वाला एक भी घर नहीं है। तीन दिन तक भूख की ज्वाला सहने के वाद मैं बहन के पास गया था, उसने भी पानी तक के लिए न पूछा ! उसके वाद मैं तुम्हें क्या वताऊँ, मेरा जी चाहता था कि आत्म-हत्या कर लूँ कि इतने में पिताजी और माताजी की मृत्यु का समाचार प्राणनाथ प्रभु से मिला। भूख से मैं निष्प्राण हो रहा था, किंतु वह समाचार सुन कर मेरे अंग-अंग में प्रतिहिंसा की ज्वाला जल उठी; मेरे अंतःकरण में 'प्रतिशोध-प्रतिशोध' की ध्वनि गूँज उठी। मैंने सोचा कि मुझे जीना चाहिए; पिताजी की साधना का दीपक वीच ही में नहीं बुझ जाने देना चाहिए।

अंगद—अवश्य, हम शत्रु के दाँत खट्टे करेंगे। (कुछ आगे बढ़ कर) देखो भाई छत्र, यही वह स्थान है, जहाँ माताजी के गहने गाड़ कर रखे गये हैं। (ज़मीन पर से एक पत्थर हटा कर, कुछ मिट्टी खोदकर, एक बरतन निकालते हैं) यही हैं भैया, वे गहने, जो हमारे भावी जीवन के स्वप्नों के एक-मात्र आधार हैं।

छत्रसाल—माँ का ऋण बुंदेलखण्ड कभी न चुका सकेगा। उनका तन, मन, धन सभी बुंदेलखण्ड की स्वाधीनता को अर्पित हो गया। उनके ये अंतिम स्मृति-चिह्न, ये आभूषण भी......

अंगद—माँ ने कहा था—जब छत्रसाल का व्याह हो तो ये आभूषण बहू को...

छत्र—हः हः! मेरा व्याह! बहू को आभूषण! नहीं भैया, इन बातों के लिए स्वतंत्रता के सैनिकों के पास समय नहीं हो सकता! इन्हें बेच कर हम सैन्य-संग्रह करेंगे। यदि मैं एक बार थोड़े-से बुंदेले भी अपने झंडे के नीचे इकट्ठे कर सकूँ तो स्वाधीनता का संग्राम जारी रखने के लिए देश-द्रोही राजा-रईसों से काफ़ी धन-संग्रह कर लूँ। ये लातों के देव बातों से न मानेंगे। अच्छा चलो इन आभूषणों को बेचने का प्रबंध करें! अब खड़े रहने के लिए हमें कुछ सहारा मिल गया है। चलो भैया, आज रण-हुंकार से संपूर्ण बुंदेलखण्ड को जाग्रत कर दें। जो केवल ऐश्वर्य्य के पालने में पले हैं, वे गरीबों के दुःखों को नहीं जान सकते। चंपतराय के पुत्रों ने अभावों के आघात सहे हैं। वे कभी महलों

में पालनों पर झूलते थे, तो कभी जंगलों में नंगे पैरों कोसों पैदल भी चले हैं; वे कभी सोने के थाल में खाते थे तो कभी उन्हें तीन-तीन दिन भूख की ज्वाला भी सहनी पड़ी है। दरिद्रता के अभिशाप को वे खूब समझते हैं। आज बुंदेलखंड में मुट्ठी भर शुभकरण, हीरादेवी और देवीसिंह सोने के थालों में खाते हैं और वैभव के पालनों में झूलते हैं, तो लाखों की संख्या में गरीब जनता दाने-दाने के लिए मुहताज हो रही है। चलो भैया, उनके दुःखों में हमें भी अपने कष्टों को मिला देना चाहिए। उन्हें स्वाधीनता और स्वावलंबन का पवित्र पाठ पढ़ाना चाहिए।

(दोनों का प्रस्थान)

(पट-परिवर्त्तन)

चौथा दृश्य

[बेतवा नदी के तट पर विजया अकेली गा रही है]

विजया—(गान)

बड़ा कठिन मन को समझाना !

क्षण क्षण जतलाती हूँ मन को—
व्याकुल मत हो तू दर्शन को !
बाँध नियम में निज जीवन को !

पर न मानता यह परवाना !
बड़ा कठिन मन को समझाना !
चाँद झलकता नील गगन में,
उसी भाँति इस सूनेपन में—
जीवन के व्याकुल बंधन में—
प्रेम चमक उठता दीवाना !
बड़ा कठिन मन को समझाना !

मैं स्वयं अपने लिए एक पहेली बनी हुई हूँ ! हृदय में जो एक तूफान छिपा हुआ है, उसके वेग को राष्ट्र-सेवा के बहाव में बहा देना चाहती हूँ । मैं चाहती हूँ कि मुझे एक क्षण का भी अवकाश न मिले । अविरत गति से मैं चलती ही रहूँ, कर्म करती ही रहूँ । एक क्षण के लिए भी जब मैं एकांत पाती हूँ, तो अँधेरी रात में शुक्र नक्षत्र की भाँति किसी का मुख मेरे हृदय में चमक उठता है ।

(बलदिवान का प्रवेश)

बलदिवान—विजया !

विजया—कौन ? बलदिवान !

बलदिवान—हाँ, विजये !

विजया—तुम फिर इस कुसमय में चले आये ! मैंने तुमसे कितनी बार कहा है कि तुम मुझसे एकांत में न मिला करो !

बलदिवान—जब हम बचपन में आँखमिचौनी खेलते थे तब तो किसी ने हमें साथ रहने से न रोका था । तुम्हें याद है

खेल-खेल में तुम राधा बनतीं और मैं कन्हैया ! अब ऐसी कौन-सी बात हो गई, जिससे मेरी विजया···

विजया—बस करो बलदिवान ! तुम्हारे सामने विजया की चर्चा करने के अतिरिक्त और भी कई बड़े-बड़े कार्य पड़े हुए हैं। मैं तो मन की प्रवृत्तियों पर शासन करने ही को पौरुष समझती हूँ।

बलदिवान—विजया ! तुम नहीं जानतीं कि मेरे अन्तःकरण में कैसी आग जला करती है !

विजया—तुम भूलते हो बलदिवान, कि तुमने विन्ध्यवासिनी के मन्दिर में आजन्म अविवाहित रह कर देश-सेवा करने की प्रतिज्ञा की है !

बलदिवान—वह प्रतिज्ञा असत्य है, कृत्रिम है। देश-सेवा के लिए अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा करने की आवश्यकता ही क्या है ? यह प्राणनाथ प्रभु का अन्याय है; अखिल विश्व को ठीक अपने ही जैसा देखने की उनकी इच्छा का फल है। क्या मुझे उन्होंने इतना दुर्बल प्राणी समझा है कि स्त्री की छूत लगते ही मैं देश के प्रति अपने कर्त्तव्य को भूल जाऊँगा ?

विजया—यदि तुम अपने को असमर्थ पाते हो तो मैं आज ही प्राणनाथ प्रभु से कह कर तुम्हें इस प्रतिज्ञा से मुक्त करा दूँगी।

बलदिवान—अर्थात् तुम मुझसे···

विजया—मरीचिका के पीछे पागल न हो, बलदिवान ! तुम अपनी बात सोचो, दूसरों के निश्चय का भार लेने की तुम्हें कोई

आवश्यकता नहीं। मैं अपनी प्रतिज्ञा भंग न करूँगी। किन्तु तुम्हारे मनोभावों को देखकर मैं यह कह सकती हूँ कि तुम यह कृत्रिम वन्धन न सँभाल सकोगे। यदि तुम्हारे साथ ज़वर्दस्ती की गई तो तुम पिशाच वन जाओगे। इसलिए तुम्हें इस प्रतिज्ञा से मुक्ति…

वलदिवान—किन्तु तुम्हारे विना…

विजया—फिर वही वात ! मैं समझती हूँ कि तुम मेरे विना रह सकोगे। और फिर यह भी तो सोचो कि तुम पुरुष हो। पुरुष की तृष्णा का अन्त नहीं है। आज मैं तुम्हें प्रिय हूँ, मेरे रूप का ऐश्वर्य आज तुम्हें अनन्त जान पड़ता है, किन्तु कल क्या होगा, यह तुम नहीं जानते। मैं कितनी कंगाल हूँ, यह मैं स्वयं जानती हूँ। तुम्हारी तृष्णा के आगे मैं कितने दिन नित्य-नवीन आसव ढाल सकूँगी ? थोड़े दिन वाद तुम देखोगे कि मैं कितनी कंगाल हूँ, कितनी निरर्थक हूँ ! नहीं वलदिवान, मैं वह दुर्दिन नहीं वुलाना चाहती !

वलदिवान—निष्ठुर !

(प्राणनाथ प्रभु का प्रवेश)

प्राणनाथ—तुमने कुछ सुना, विजया !

विजया—क्या गुरुदेव ?

प्राणनाथ—छत्रसाल और अंगदराय ने मुगलों की नौकरी कर ली है।

वलदिवान—यह सव राजा जयसिंह की नीचता है। वह

स्वयं जिस तरह मुगलों के चरण-सेवक बने हुए हैं, उसी तरह भारत के प्रत्येक वीर राजपूत को बना देना चाहते हैं ।

विजया—किसी व्यक्ति को बिना सोचे-विचारे एकदम नीच कह देना उचित नहीं। बेचारे छत्रसाल और अंगदराय अपने सभी रिश्तेदारों के आगे गिड़गिड़ा कर निराश हो चुके थे। जब उन्हें कहीं दो रोटियों का ठिकाना न मिला, तब राजा जयसिंह ने उन्हें खड़े होने को जगह दी। इसे तुम नीचता समझते हो ?

बलदिवान—बुंदेले किसी की कृपा के टुकड़े नहीं खाते । वे सदा से तलवार की कमाई खाते रहे हैं।

विजया—तो छत्रसाल भी तलवार के ज़ोर से ही अपना गत राज्य प्राप्त करेंगे !

बलदिवान—मुगलों की नौकरी करके ?

प्राणनाथ—यह समाचार सुनकर पहले मुझे भी आश्चर्य हुआ था। पर इस विश्व में आश्चर्यकारक कुछ भी नहीं। ऐश्वर्य प्राप्त करने का सबसे सुगम मार्ग है, दिल्ली-सम्राट् का कृपा-पात्र बनना। भीषण कठिनाइयों से विवश हो कर यदि छत्रसाल ने भी वही पथ पकड़ा तो आश्चर्य ही क्या ? इस छोटी सी उम्र में वह इतनी बड़ी शक्ति से लोहा लेकर विजय पाना असम्भव समझने लगे होंगे । कुछ भी हो, पर अब हमारा कार्य बड़ा कठिन हो गया है। चम्पतराय और लालकुँवरि के बलिदानों को बुंदेलखण्ड भूल नहीं सकता था। उनके पुत्रों को सामने खड़ा करके हम बुंदेलखण्ड में हिंसा की एक लहर पैदा कर सकते थे, किन्तु, जब छत्रसाल

और अंगदराय दोनों ही मुग़लों के सेवक बन गये, तब हमारा आंदोलन बहुत कुछ आधारहीन हो गया है ।

विजया—निराश न हों, गुरुदेव ! मेरा मन कहता है छत्रसाल देश के साथ द्रोह करने शत्रु के डेरे में नहीं गये । उनके दिल्ली जाने में अवश्य ही कोई गुप्त अभिसंधि छिपी हुई है । मुझे विश्वास है कि वे अवश्य ही बुंदेलखंड की वीर-भूमि में लौटेंगे और शीघ्र ही लौटेंगे । संभव है उनके लौटने पर हमारी साधना की ज्वाला नई समिधाएँ पाकर बड़े वेग से उद्दीप्त हो सके ।

प्राणनाथ—मेरा हृदय भी यही कहता है, किंतु इन भोले-भाले वीर बुंदेलों को क्या कह कर समझाया जावे ? यदि इनके हृदय की ज्वाला ठंडी पड़ गई तो सारा काम ही बिगड़ जायगा । वास्तव में आज प्राणनाथ की बुद्धि भी असमंजस में पड़ गई है । मैं गुजरात से यहाँ आया हूँ, तुम महाराष्ट्र से आई हो । इस वीर जाति को जाग्रत करके दिल्ली-साम्राज्य की जड़ खोखली करने का हमारा उद्योग क्या शीघ्र ही सफल न होगा ? चलो विजया, चलो बलदिवान, शांति से बैठ कर हम इस परिस्थिति पर विचार करें ।

(तीनों का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान—देवगढ़ की तलहटी । छत्रसाल घायल अवस्था में पड़े हुए हैं]

छत्रसाल—(मूर्छा से जाग कर तथा चारों ओर निगाह फेंक कर) कैसा भयानक सन्नाटा है ! जान पड़ता है शत्रु-सेना पराजित हो कर मैदान छोड़कर भाग गई है, और मुगलों की सेना विजयी होकर गढ़ में प्रवेश कर चुकी है । मैं ही यहाँ अकेला पड़ा हुआ हूँ । (उठने का प्रयत्न करते हैं, किंतु उठ नहीं पाते) आह, उठा नहीं जाता । बड़ा दर्द हो रहा है ।

(अंगदराय का दो बुंदेला साथियों के साथ प्रवेश)

अंगद—यह तुम्हारी क्या दशा हुई, भैया !

छत्रसाल—तुम हो दादा ! आ गए ? मैं तो समझा था कि इस निर्जन वन में मैं गीदड़ों और गिद्धों का भोजन बन जाऊँगा ।

अंगद—ऐसी बात न कहो भैया ! तुम बुंदेलखंड के उद्धार का कार्य पूरा किये बिना कैसे जा सकते हो ?

छत्रसाल—बड़ा दर्द हो रहा है, दादा !

अंगद—(साथियों से) जल्द डोली लाओ ! (बैठ कर छत्रसाल के बदन पर हाथ फेरते हैं)

छत्रसाल—तुम्हें मेरा पता कैसे लगा दादा !

अंगद—एक मुसलमान सिपाही के द्वारा। उस समय मुगल सेना में विजय का उत्सव मनाया जा रहा था। सेनापति बहादुर-खाँ सिपाहियों को इनाम बाँट रहे थे। मदिरा का दौर चल रहा था। वेश्या के हास्य और संगीत ने सैनिकों को पागल बना रखा था। किंतु, मेरा मन उस महफिल में नहीं लग रहा था। शरीर मुग़ल-सेना का सहचर था, पर हृदय अपने को अकेला पा रहा था। तुम्हें देर तक न लौटते देख मैं अज्ञात आशंका से आकुल होकर डेरे से बहुत दूर चला आया, उत्सव के कोलाहल से बहुत दूर।

छत्रसाल—क्या समय है, दादा!

अंगद—रात का तीसरा पहर है, भैया!

छत्रसाल—इसका अर्थ यह हुआ कि मुझे यहाँ पड़े-पड़े बारह घंटे हो गये। कोई दिन के चार बजे मैं यहाँ घायल होकर गिरा था। तब से किसी ने मेरी सुध ही नहीं ली।

अंगद—इसी लिए भैया, मेरा मन इन मुग़लों से विमुख हो गया है। इन लोगों के आगे हमारी जान का मूल्य ही क्या है? तुम्हारी बाट देखते-देखते जब मैं थक गया तो अपरिचित प्रदेश में तुम्हारा पता लगाने को निकल पड़ा। तुम्हारे जीवट को मैं जानता हूँ। तुम स्वर्गीय भाई सारवाहन के अवतार हो, जो चौदह वर्ष की आयु में ही शत्रु की प्रबल सेना से अकेले ही भिड़ गये थे। पिताजी का संपूर्ण ओज और तेज भी तुममें अवतरित हुआ है और माँ का स्वाभिमान तो तुम्हें विरासत में

भिला है। जव हमारी सारी सेना लौट आई और तुम न लौटे, तव मैं समझ गया था कि तुम शत्रु का पीछा करते हुए बहुत दूर चले गये हो।

छत्रसाल—किंतु, तुम कहते थे कि एक मुसलमान सैनिक की कृपा से तुम्हें मेरा पता लगा।

अंगद—हाँ भैया! जब मैं खोज-खोज कर थक गया तो निराश होकर एक शिला पर बैठ गया। जी चाह रहा था कि युग-युग तक उसी शिला पर बैठा रहूँ। मेरे लिए जीवन में कोई स्वाद नहीं रहा था। जब लक्ष्मण के शक्ति लगी थी तव राम की जो अवस्था हुई, वैसी ही मेरी दशा थी। इतने में एक मुसलमान सिपाही उधर से निकला। मुझे देख कर वह ठिठक गया। अँधेरी रात में एक शिला के ऊपर मूर्ति-सा मैं बैठा था। वह समझा मैं भूत हूँ। जैसे ही वह पास से गुजरा मैं खड़ा हो गया। मेरे खड़े होते ही वह चीख पड़ा।

छत्रसाल—चीख पड़ा!

अंगद—हाँ भैया! चीख पड़ा! मैंने कहा—डरो मत। मैं इन्सान हूँ। उसने कहा—इस अँधेरी रात में भयानक जंगल में कोई इन्सान कैसे बैठ सकता है? मैंने कहा—और तुम भी तो यहाँ इस अँधेरी रात में घूम रहे हो। उसने कहा—मैं बड़ी दूर से आ रहा हूँ; सिर्फ एक खबर देने, एक बहादुर इन्सान की जान बचाने के लिए। यह सुनकर मेरे हृदय में आशा का संचार हुआ। काले मेघों में जैसे बिजली कौंध गई।

हम जयसिंह जी के साथ रह सकते थे, किंतु बहादुरखाँ ! छिः-छिः !

छत्रसाल—यह क्या कहते हो दादा ! वह पिताजी के अभिन्न-हृदय मित्र हैं। उनसे उन्होंने पगड़ी बदली थी। हम पर भी उनका पुत्र के समान स्नेह है।

अंगद—स्नेह था। किंतु, इस युद्ध में तुम्हारा शौर्य देखकर उन्हें भी ईर्षा हो गई है। भैया, अब हम वापस बुंदेलखंड लौट जावेंगे। हम मुगलों की नौकरी नहीं करेंगे। किसी भी उद्देश्य की सिद्धि के लिए नहीं। यह मँहगा सौदा हम अधिक दिनों तक न सह सकेंगे।

छत्रसाल—मैं तो अभी बुंदेलखण्ड को नहीं लौटूँगा।

अंगद—यह मैं क्या सुन रहा हूँ छत्रसाल ! तुम मुग़लों के सेवक बनकर अपने ही भाइयों पर तलवार चलाओगे ?

छत्रसाल—नहीं भैया ! यह मेरा शिक्षा-काल है। मुग़ल-सेना में रहकर मैंने उनकी युद्ध-नीति बहुत-कुछ देख और समझ ली है। अब मेरी इच्छा है कि कुछ दिन मराठों की युद्ध-नीति का अध्ययन करूँ। इसीलिए मैं शिवाजी के पास जाऊँगा। स्वर्गीया माँ का संदेश छत्रसाल कभी न भूलेगा। बुंदेलों को मुझ पर विश्वास करना ही होगा, किंतु बीच के इन कुछ दिनों में मैं अपनी नाव को ज़रा दृढ़ कर लूँ। फिर भँवरों की चिंता न करते हुए उसे सागर में छोड़ दूँगा।

(दोनों साथी डोली लाते हैं)

अंगद—लो डोली आगई। अब चलें।

(अंगदराय तथा उनके साथी छत्रसाल को डोली में बैठाकर ले जाते हैं

[पट-परिवर्त्तन]

छठा दृश्य

[हीरादेवी का मंत्रणागृह। हीरादेवी अकेली कमरे में टहलती हुई विचार कर रही है]

हीरादेवी—जब अपने अतीत की ओर देखती हूँ, तो मुझे अपने ही ऊपर घृणा होती है। मैं ऐसी पिशाचिनी कैसे बन गई। लालकुँवरि! हाँ, केवल लालकुँवरि के कारण! संपूर्ण बुंदेलखंड उसीके चरणों में क्यों हृदय न्योछावर करे? मेरा नारी-हृदय ईर्षा से जल उठा। उस ईर्षा की अग्नि में जल गया महेवा का राज-वंश और बुंदेलखंड की स्वाधीनता। अब लालकुँवरि के बेटे राह के भिखारी बने घूमते हैं। मैं अपनी इस सफलता पर हँसूँ या रोऊँ, खुशी से फूल उठूँ या लज्जा से गड़ जाऊँ? जब अपने गौरव को अबाध देखती हूँ, उसे चुनौती देनेवालों का अभाव पाती हूँ, तो मेरा हृदय पश्चात्ताप की ज्वाला में जलने लगता है; किंतु, ज्योंही चंपतराय, लालकुँवरि या उसके पुत्रों की गौरव-

गाथा सुनती हूँ मेरा हृदय बिलकुल विवश हो जाता है। उनके गौरव को खर्व करने के लिए मैं नीच से नीच कृत्य करने को तैयार हो जाती हूँ। अपनी इस प्रकृति को मैं क्या करूँ!

(सुजान और इन्द्रमणि का प्रवेश)

सुजानसिंह—माँ!

हीरादेवी—आओ, बेटा! छत्रसाल का कुछ पता लगा?

सुजानसिंह—उन्हें राजा जयसिंह ने मुग़ल-सेना में स्थान दिला दिया है।

हीरादेवी—यह बहुत बुरा हुआ सुजान!

इन्द्रमणि—क्यों? जब हमने मुग़लों की अधीनता स्वीकार की थी, तब तो तुमने नहीं कहा था कि बहुत बुरा हुआ!

हीरादेवी—हमारे अंतःकरण में बुंदेलों की आन की आग रही ही नहीं। हीरादेवी की नीचता ने उसे बुझा दिया। हमारा धन-वैभव और राज्य की सीमाएँ अवश्य बढ़ी हैं, किंतु जनता के हृदय से हमारा स्थान चिरकाल के लिए नष्ट हो गया है। कुछ भी हो, किंतु छत्रसाल का यह पतन तो........

सुजानसिंह—तुम्हें पश्चात्ताप हो रहा है, माँ! तब तो अब भी रास्ता बदला जा सकता है। अब भी बुंदेलखंड तुम्हें सिर-आँखों पर बैठा सकता है। छत्रसाल को महेवा की जागीर दिला कर हम उनसे मेल कर सकते हैं।

हीरादेवी—रास्ता बदला जा सकता है! अब! जब जीवन-यात्रा समाप्त होने जा रही है, तब रास्ता बदलना कैसा? आज

यदि मैं कलेजा काट कर भी जनता के चरणों पर रख दूँ, तब भी वह मेरा विश्वास न करेगी। जनता क्षमा करना नहीं जानती। सुजान, वह प्रायश्चित्त करने का अवसर नहीं देती।

सुजानसिंह—तो फिर ?

हीरादेवी—मरते दम तक मेरे लिए एक ही पथ है। मैंने भीमजी के प्राण लिए, उसके बाद गृह-युद्ध प्रज्वलित करके पति को असमय में संसार से विदा लेने को बाध्य किया। बेटा इन्द्रमणि, तुम्हें वह दिन याद है जब चंपतरायजी इन्द्रमणि धँधेरे के यहाँ आश्रय लेने गये थे, मैंने तुम्हें उनके विरुद्ध १६००० सवार देकर भेजा था, और तुम नाला कूदते हुए घोड़े से गिर कर सख्त घायल हो गए थे। भगवान ने ही तुम्हारी रक्षा की थी। महेवा को बरबाद करने की धुन में मैंने कैसे कैसे आघात सहे हैं, बेटा !

इन्द्रमणि—माँ, मैं छत्रसाल से इसका बदला लूँगा।

हीरादेवी—बदला ! कौन किससे बदला लेगा ! छत्रसाल भी शायद अपने माँ-बाप की मृत्यु का बदला ओड़छा के राजवंश से चुकाने की बात सोचता हो। क्यों न सोचे ? जिस प्रकार साँप अपनी चोट नहीं भूलता, उसी प्रकार बुंदेला भी अपने ऊपर किया गया आघात नहीं भूलता। फटा हुआ दूध भले ही मिल जाय पर बुंदेलों के फटे हुए दिल नहीं मिलते। ओड़छा और महेवा के राजवंशों के वैर का कभी अन्त नहीं हो सकता। और जब तक इसका अंत नहीं होता, बुंदेलखंड को मुग़लों के अधीन रहना ही पड़ेगा।

सुजान—तुम्हें भी बुंदेलखंड की स्वाधीनता की चिन्ता है, माँ!

हीरादेवी—तुम्हें आश्चर्य होता है, बेटा! तुम मुझे इतनी पतित, इतनी नीच समझते हो! पर बात ऐसी नहीं है। संसार में ऐसा कौन-सा पिशाच-हृदय है जो देश की गुलामी को पसंद करे? मुझे बुंदेलों की स्वाधीनता प्राणों से भी अधिक प्यारी है और उसी की प्राप्ति के लिए मैं महेवा के राजवंश में नाम लेवा और पानी देवा नहीं छोड़ना चाहती। गृह-युद्ध की पूर्णाहुति होने के बाद स्वाधीनता-संग्राम का नेतृत्व ओड़छा करेगा, महेवा नहीं। मैंने आज बुंदेलखंड के मुख्य-मुख्य राजाओं को मंत्रणा के लिए बुलाया है। यही समय उनके साथ मंत्रणा करने का रखा है। वे लोग अब आते ही होंगे।

सुजान—अब तुम बूढ़ी हो गई हो, माँ! राजनीति में भाग लेने के बदले तुम्हें विश्राम और हरि-भजन ही……

हीरादेवी—विश्राम और हरि-भजन! ह हः हः! हीरादेवी इसके लिए पैदा नहीं हुई। तुम ओड़छा के महाराज बनकर माँ को हरि-भजन का उपदेश देते हो, सुजान! यह न होगा, हीरादेवी अंतिम घड़ी तक बुंदेलखण्ड की किस्मत लिखती रहेगी। समझे!

(चंदेरी के राजा देवीसिंह और कौंच, सिरौंज तथा
धामौनी के राजाओं का प्रवेश)

हीरादेवी—चंदेरी, सिरौंज, कौंच और धमौनी के महाराजाओं ने आज ओड़छा का राजमहल अपने चरणों से पवित्र किया इस के लिए मैं उनकी आभारी हूँ।

(सब यथा-स्थान बैठते हैं)

देवीसिंह—ओड़छे की राज-माता ने हम लोगों को किस लिए याद किया है ?

हीरादेवी—बहुत संक्षेप ही में मैं अपनी बात आप लोगों से कहूँगी। आप लोगों ने सदा ही ओड़छा राज-वंश का साथ दिया है, इसलिए मैं आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना कर्तव्य समझती हूँ। भले और बुरे प्रत्येक काम में एक-मत हो कर हम लोगों ने अपना बल प्रकट किया है। आज वे वीरवर शुभकरणजी जिनके साहस और शौर्य से हम चंपतराय जैसे लुटेरे और स्वार्थी व्यक्ति को दंड दे सके, बुलाने पर भी नहीं आए, इसका मुझे खेद है।

धमौनी के राजा—हीरादेवी जी, अब चंपतराय इस दुनिया में नहीं हैं, उनके प्रति आदर, शिष्टाचार.........

हीरादेवी—आदर ! शिष्टाचार ! किसके प्रति ! देश-भक्ति का बाना पहनकर स्वार्थ-सिद्धि करने वाले.........

सिरोंज के राजा—झूठ।

हीरादेवी—झूठ ! नहीं यह बिलकुल सच है। उनका त्याग केवल परिस्थितियों की उपज थी, उन्होंने अपनी ज़िन्दगी में कितने रंग बदले ! एक दिन था जब जुझारसिंह जी के स्वर्गवास पर उन्होंने उनके नाबालिग लड़के को गद्दी पर बैठाकर स्वयं ही ओड़छा पर शासन करना शुरू किया था, जब पृथ्वीराज को क़ैद कर ग्वालियर भिजवा दिया, तब आप स्वयं ही गद्दी पर आ विराजे।

बाद में हम पर दया दिखाकर मेरे स्वर्गीय पतिदेव को गद्दी पर बैठा दिया। एक दिन वह दारा के साथ कंधार विजय करने गये, दूसरे दिन औरंगज़ेब के सहायक बनकर दारा का सर्वनाश करने पहुँचे! क्या ऐसे अस्थिर व्यक्ति को स्वाधीनता-संग्राम का नेता बनाया जा सकता था?

सिरौंज के राजा—नहीं, कभी नहीं।

हीरादेवी—मुझे अभी तक बुंदेलों ने बिलकुल ग़लत समझा है। वे समझते हैं कि मैं मुग़लों के चरण चूम कर अपने राज्य का विस्तार करना ही जीवन का चरम-लक्ष्य समझती हूँ। किन्तु यह बात सर्वथा असत्य है। शायद आप लोगों ने सुना होगा कि चंपतराय के पुत्र छत्रसाल और अंगदराय मुग़ल-सेना में भर्ती हो गये हैं। अब वे भाइयों के खून से पृथ्वी को लाल करेंगे। इन बेपेंदी के लोटों का हमें क्यों साथ देना चाहिए?

देवीसिंह—हरगिज़ नहीं। यदि वे बुन्देलखण्ड की स्वाधीनता का नाम लेकर भी हमें उभाड़ना चाहेंगे, तो भी हम उनका साथ न देंगे।

हीरादेवी—यह निश्चित है कि किसी समय वे स्वतन्त्रता के नाम पर हमें मुग़ल-साम्राज्य की प्रबल शक्ति से भिड़ाकर हमारा सत्यानाश कराने को उतारू हो जायँगे। हमें इस विषय में पहले से सावधान रहना चाहिए। आज उनके पास है ही क्या? हम लोगों को भी वे अपने जैसा ही बनाने का उद्योग करेंगे, किन्तु.......

देवीसिंह—हम कभी उनके झाँसे में न आवेंगे।

हीरादेवी—आप लोगों के इस निश्चय से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। चलिए अब चलकर भोजन किया जाय।

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

सातवाँ दृश्य

[स्थान—भीमा नदी का तट। छत्रसाल और शिवाजी का बातें करते हुए प्रवेश। छत्रसाल के कपड़े भीगे हुए हैं]

शिवाजी—बरसात में भीमा नदी को पार करके आना साधारण साहस का काम नहीं है। वास्तव में छत्रसाल, मुझे तुम्हारी लगन, निर्भयता और दृढ़ता से बड़ी प्रसन्नता हुई है।

छत्रसाल—यह मेरा अहोभाग्य है कि मैं आज अपने को भारत के स्वाधीनता-यज्ञ के प्रधान पुरोहित महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी के निकट पा रहा हूँ। मेरे इस अकिंचन जीवन का मूल्य ही क्या है? ज्योंही मुझे ज्ञात हुआ कि आप भीमा के इस किनारे पड़ाव डाले हुए हैं, मैं शिकार खेलने के बहाने मुगल छावनी से चल पड़ा। आपसे मिलने की जिस शुभ और मधुर अभिलाषा को लेकर मैं मुगलों का सहायक बनकर देवगढ़ के युद्ध में सम्मिलित हुआ था—उसके

पूर्ण होने में दो वाधाएँ थीं—एक तो मुग़लों के गुप्तचर और दूसरी भीमा की वाढ़। वाढ़ के उतरने की प्रतीक्षा करने का समय कहाँ था! मैं एकदम नदी में कूद पड़ा। आखिर मेरी अभिलाषा का वल भीमा की वाढ़ से प्रवल सिद्ध हुआ।

शिवाजी—निश्चय ही छत्रसाल, तुम वीर पिता के वीर पुत्र हो। स्वर्गीय महाराज चंपतराय के साहसिक कार्यों से मैं भली-भाँति परिचित हूँ। उनके जैसी कठिनाइयों और विपरीत परिस्थितियों में यदि मुझे कार्य करना पड़ता तो वहुत सम्भव था कि मैं साहस छोड़ देता, किन्तु उस महाप्राण ने अंतिम क्षण तक स्वातन्त्र्य-साधना का दीपक न वुझने दिया। और तुम्हारी माताजी! उनका क्या कहना! वैसी तेजस्विनी, निरन्तर कष्टों से परितप्त होकर भी भाग्य को कभी न कोसनेवाली स्त्री, संसार में और कौन-सी पैदा हुई है? जैसे कष्ट सीता ने वनवास में सहे, द्रौपदी ने अपने दुर्दिनों में पाये, लालकुँवरि को उनसे कहीं अधिक यातनाएँ सहनी पड़ी थीं। चौवीस-चौवीस घंटे घोड़े की सवारी, तीन तीन दिन तक मुँह में अन्न-पानी का न जाना, सगर्भा अवस्था में भी शत्रु पर तलवार चलाना! छत्रसाल मैं तो उनके अपूर्व ओज और अद्भुत साहस का स्मरण कर प्राणों में नवीन स्फूर्ति का अनुभव करता हूँ।

छत्रसाल—माता और पिता के साहसिक जीवन का उदाहरण मेरा वह खज़ाना है जिसके सहारे राह का भिखारी होते हुए मैं दिल्ली के सम्राट् से लोहा लेने को प्रस्तुत हुआ हूँ। कार्य

जितना महत्त्वपूर्ण और दुस्तर है, उतना ही मेरे पास साधनों का अभाव है।

शिवाजी—निश्चय ही छत्रसाल, आज तुम्हारे पास न धन है, और न सेना। किंतु, जब मैंने महाराष्ट्र में स्वराज्य-साधना का श्रीगणेश किया था तब मेरे पास क्या था? मेरे साथ कौन था? यहाँ तक कि पिताजी का आशीर्वाद भी मुझे प्राप्त न था! हम केवल चार युवक थे, जिन्होंने भवानी के मन्दिर में देश की स्वाधीनता के लिए प्राणों की आहुति देने का प्रण किया था। हम चार नवयुवकों के हाथ का रोपा हुआ पौधा आज विशद वृक्ष के रूप में दिखाई दे रहा है। छत्रसाल, तुम्हें साधनों की क्षीणता पर कभी निराश न होना चाहिए।

छत्रसाल—मैं न आशा के प्रकाश से परिचित हूँ और न निराशा के अंधकार से। मुझे याद है केवल माँ का संकेत। आकाश के नक्षत्रों में बैठकर मेरे जीवन की कुहू-निशा में वे महानाश का तांडव करने की प्रेरणा कर रही हैं। अपना कर्तव्य मैं उसी दिन निश्चय कर चुका हूँ, जिस दिन मेरे पिता और माता ने स्वर्ग के विमान पर पैर रखे थे। उसी के लिए आपसे व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने मैं यहाँ आया हूँ।

शिवाजी—मुझसे व्यावहारिक ज्ञान सीखने आये हो, छत्रसाल! सिंह के पुत्र को कहीं शिकार करना सिखाया जाता है! क्षत्रिय-पुत्र अभिमन्यु की तरह माँ के पेट से ही युद्ध-नीति सीखकर आता है। तुमने तो जन्म लेने के पहले ही तोपों का गर्जन, तलवारों की

खनखनाहट, आहत सिपाहियों का चीत्कार और रणोन्मत्त वीरों की हुंकार श्रवण की है। बचपन से ही तुमने रक्त की सरिताओं में स्नान किया है, रण-चण्डी को रुण्ड-मुण्डों से अपना खप्पर भरते देखा है। तुम जिन संस्कारों में पले हो उन्होंने तुम्हारे हृदय से जीवन का मोह और मृत्यु का भय दूर कर दिया है।

छत्रसाल—मैं कुछ दिनों आपके साथ रहकर मुग़लों से युद्ध करना चाहता हूँ।

शिवाजी—इसमें केवल समय नष्ट होगा। चंपतराय और लालकुँवरि के बलिदान की चकाचौंध से अभी बुंदेले अनुप्राणित हैं। उनका जोश ठंडा न होने दो, छत्रसाल! तुम्हारा स्थान सह्याद्रि की चट्टाने नहीं; विंध्य की पर्वत-माला है। महाराष्ट्र जैसे सुदूर प्रदेश में रहकर भी मैं सारे भारतवर्ष की राजनीति से अवगत रहता हूँ। मैं देख रहा हूँ कि इस समय मुगल-साम्राज्य की जड़ें हिल रही हैं। औरंगजेब की हिंदू-विरोधी नीति ने राजपूताना, मालवा, विहार, और बुंदेलखंड में असंतोष की एक लहर प्रवाहित कर दी है। इस अवसर का उपयोग करके तुम भारत को स्वतंत्र बनाने के कार्य में अपने प्रांत का सहयोग दिला सकते हो। मैं इस दुनिया में कितने दिन रह सकूँगा, मैं नहीं जानता, किंतु तुम अभी नवयुवक हो, भगवान करें, तुम्हें दीर्घायु प्राप्त हो और तुम अपने बाहु-बल से भारत पराधीनता की बेड़ियाँ काट सको। मैं तुम्हें अपने का उत्तराधिकारी बनाता हूँ। लो यह मेरी तलवार!

जो आग मैंने महाराष्ट्र में प्रज्वलित की है, जिस साधना के लिए बुंदेलखण्ड में चंपतरायजी ने अपने प्राणों की आहुति दी है, उसे तुम भारत के कोने-कोने में फैला दो।

छत्रसाल—(हाथ में तलवार लेकर) विश्वास कीजिए, महाराज, मैं आपके आदेश के पालन में आत्मोत्सर्ग करूँगा; किंतु, बुंदेलखण्ड में विलासी, पामर और देश-द्रोही राजाओं के कारण सफलता की विशेष आशा नहीं है।

शिवाजी—उन राजा-महाराजाओं को साथ लेने का एक वार उद्योग करो, यदि वे साथ न दें, तो निराश न हो। उन बूढ़ों को चारपाइयाँ तोड़ने को छोड़ दो। देश की युवक शक्ति तुम्हारे साथ रहेगी। वे अपमान और दारिद्र्य की यातना से सुलग रहे हैं, वे बंद ज्वालामुखी की तरह भीतर ही भीतर धधक रहे हैं। तुम जाकर उन्हें एक झंडे के नीचे लाओ। तुम्हारे सिपाही भाड़े के टट्टू न होंगे, वे एक चिरंतन साधना के पुजारी, माँ पर वलि हो जाने वाले दीवाने होंगे। जाओ भैया, विंध्य की पर्वतमाला को रण-हुंकार से गुंजित कर दो। बुंदेलों-जैसी वीर-जाति यदि संगठित होकर पराधीनता की बेड़ियाँ काटने को तत्पर हो जाय तो यम भी उनका सामना नहीं कर सकता। और तुम जैसा साक्षात् महाकाल का अवतार वीर पुरुष यदि उनका नायक हो, तब तो.......

छत्रसाल—मुझे ऐसी उपाधियों की आवश्यकता नहीं है, महाराज! मैं तो जनता का विनम्र सेवक हूँ। माता-पिता का वलि-

दान मौन भाषा में मुझे जो आदेश दे रहा है, उसके बाद मुझे किसी उत्तेजना की आवश्यकता नहीं। संपूर्ण भारत की स्वाधीनता मेरे जीवन का स्वप्न होगा। किंतु बुंदेलखंड के अपमान का प्रतिशोध दिल्ली-पति से लेना मेरा प्रथम कर्तव्य है।

शिवाजी—निश्चय ही छत्रसाल! तुम्हारा आधा काम तो तुम्हारे पिता ही कर गये हैं। स्वातंत्र्य-संग्राम की सफलता जय-पराजयों की गिनती पर निर्भर नहीं होती। सदियों की गुलामी एक दिन में या एक प्राणी के बलिदान से दूर नहीं होती। विंध्यवासिनी के तुम उपासक हो छत्रसाल! उसके गले में तुमने नरमुंडों की माला देखी होगी। स्वाधीनता देवी भी इसी भाँति बलिदानों की माला पहन कर प्रसन्न होती है। ये बलिदान मार्ग के गर्भ में पड़कर उस स्वर्ण-मंदिर तक पहुँचने का कार्य सुगम करते हैं। अगली पीढ़ियाँ उन पर पैर रख कर सफलता के स्वर्ण मंदिर में पहुँचती हैं। चंपतरायजी को दीवाना कहनेवाले बहुत मिलेंगे। उन्होंने अपना राज्य बरबाद किया, दिल्ली की मनसबदारी छोड़ी और दर-दर मारे फिरने का जीवन विताया। लोग इसे मूर्खता कह सकते हैं, किंतु यदि वे ऐसा न करते तो बुंदेलखंड किसी युग में भी स्वाधीनता का स्वप्न न देख सकता।

छत्रसाल—आप ठीक कहते हैं। मैं उनके पद-चिह्नों पर चल सकूँ, यही मेरी कामना है। पिताजी की तरह आन पर जान दे [illegible]ना ही मेरी चरम सफलता है।

शिवाजी—एक बात का ध्यान रखोगे तो तुम अवश्य सफल होगे। तुम्हारे पास न तो मुग़लों जैसी विशाल सेना है और न शस्त्रास्त्र ही। बुंदेलों का मर-मिटने का पागलपन कहीं उन्हें दीप-शिखा पर जल मरने वाले पतंगों की तरह एक बार में ही वलि न करा दे। तुम उनके उत्साह को संयत करते रहना। यदि शत्रु को प्रबल पाओ तो परिस्थिति के अनुसार पीछे हटने में हेठी न समझना। अचानक रात को आक्रमण करने में अधर्म की आशंका न करना। बुंदेले राजाओं को यदि साथ न ले सको तो उन्हें तटस्थ रहने के लिए राजी करना। इसके लिए यदि उनसे कुछ अनुनय भी करना पड़े, पुराने वैर भुलाने पड़ें, तो इसे तुम अपना अपमान न समझना। पाप-पुण्य, मानापमान, सुख-दुःख और जय-पराजय को निर्विकार भाव से ग्रहण करते हुए लक्ष्य की ओर बढ़ते जाना और लगन लगाए रहना।

छत्रसाल—छत्रसाल ऐसा ही करेगा। किंतु बुंदेलों का स्वभाव कैसे बदला जा सकेगा! वे तो तलवार के एक झोंके में ही हिसाब-किताब बेबाक़ कर लेना उचित समझते हैं। या तो वे शत्रु का सिर काट लेते हैं या अपना कटवा देते हैं। वे कल के लिए तो कुछ छोड़ते ही नहीं।

शिवाजी—नेता में यही ख़ूबी होनी चाहिये कि वह असमय में जनता के उत्साह का दुरुपयोग न होने दे, उचित समय की प्रतीक्षा करे और तभी शक्ति का प्रदर्शन करे। मैंने मराठों को अनुशासन का महत्व बताया है। यदि तुम्हारा व्यक्तित्व भी

बुंदेलों को यही पाठ पढ़ा सका, तो कोई कारण नहीं कि तुम सफल न हो।

(दोनों का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

आठवाँ दृश्य

[विंध्यवासिनी के मंदिर में प्राणनाथ प्रभु और अंगदराय]

अंगदराय—गुरुदेव, अभी तक भैया छत्रसाल क्यों नहीं आए। पिशाचिनी हीरादेवी के गुप्तचरों ने तो कोई अनर्थ नहीं ढाया ?

प्राण —तुम्हारी आशंका व्यर्थ है अंगदराय ! छत्रसाल वहुत वड़ी उम्र लेकर आये हैं। वे अव आते ही होंगे। तुम अपने आगरा के अनुभव तो सुनाओ।

अंगद—आगरा के अनुभव मैं क्या सुनाऊँ ? दरबार में तो मैं गया ही नहीं। उस तख्तेताऊस के आगे वे ही सिर झुकाएँ जिन्हें अपने राज्यों की रक्षा करने का मोह हो, अपने विभव विलास की सीमाएँ वढ़ाने का लोभ हो। हम तो सर्वनाश पर मुसकाने वाले सैनिक हैं। स्वाभिमान हमारे लिए राज्य-सुख से वहुत वस्तु है।

प्राण—फिर भी आगरा में इस बात की चर्चा तो सुनी होगी कि देवगढ़ के युद्ध में छत्रसाल ने जो पराक्रम दिखाया था, उससे औरंगज़ेव प्रसन्न हुआ या नहीं !

अंगदराय—लोग कहते हैं औरंगजेव कृतघ्न है। दरवार में देवगढ़ की विजय पर वहादुरखाँ कोका को खिलअत दी गई, उसका मंसव वढ़ाने की घोषणा की गई, किंतु जिसके पराक्रम से यह विजय प्राप्त हुई थी, उस छत्रसाल का किसी ने नाम भी नहीं लिया।

प्राण—उससे ऐसी आशा ही न करनी चाहिए थी। जो अपने वाप का न हुआ, वह किसका होगा ! तुम दोनों भाई जव मुग़ल सेना में शामिल होकर देवगढ़ के राजपूत राजा के विरुद्ध लड़ने गये थे, तव मैं तो आशंका से काँप उठा था। हीरादेवी ने यह प्रचार करके कि छत्रसाल और अंगदराय ने मुग़लों की नौकरी कर ली है, तुम्हारी तरफ़ से वुंदेलों का मन फेरने का पूरा प्रयत्न किया था और उसे सफलता भी मिली है। यदि तुम लोग लौटने में कुछ और विलंव करते तो हमारे सारे उद्योग पर पानी फिर जाता।

(छत्रसाल, वलदिवान और विजया का कुछ वुंदेलों के साथ प्रवेश)

अंगदराय—लो भैया आगये !

प्राणनाथ—आओ छत्रसाल ! वुंदेलखंड तुम्हारा प्रभात के सूर्य की भाँति स्वागत करता है। वुंदेलखंड की आशा के आधार, तुम आशा के कुंकुम से दसों दिशाओं को लाल करते हुए आओ !

छत्रसाल—जनता के विनम्र सेवक छत्रसाल के लिए यह हर्ष का विषय है कि वह फिर जनता के बीच में उसकी सेवा के लिए लौट आया है। आज मेरी इक्कीसवीं वर्ष गाँठ है। मैं चाहता हूँ कि आज का दिन नवीन अनुष्ठान का श्रीगणेश करने की प्रतिज्ञा के साथ प्रारंभ किया जाय। जिस महान् उद्देश्य के लिए पिताजी ने प्राण दिये, माँ ने घोर यातनाएँ सहकर जीवन की बलि चढ़ाई, जिस कार्य की सिद्धि के लिए प्राणनाथ प्रभु को गुजरात का ऐश्वर्य का पालना छोड़कर बुंदेलखंड के जंगलों में मारे-मारे फिरना उचित जान पड़ा, उसकी सफलता के लिए हमें पूरे वेग से प्रयत्न करना चाहिए।

बलदिवान—वास्तव में आज का दिन बुंदेलखण्ड के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाना चाहिए। मैं थोड़ा-सा भाग्यवादी हूँ। वर्षों से मैं बुंदेलों को मुग़ल-साम्राज्य के विरुद्ध युद्ध ठानने के लिए उत्साहित करता रहा हूँ। किंतु काका चंपतराय जी का उद्योग भी जब असफल रहा तो मैंने समझा कि हमारा भाग्य ही विपरीत है। अभी भैया छत्रसाल से इसी विषय में वाद-विवाद हो रहा था। मैंने कहा—विपत्ति में धैर्य, ऐश्वर्य के क्षणों में क्षमाशीलता, शस्त्र-संचालन में पूर्ण-कुशलता, निरंतर प्रभावशाली महान् व्यक्तित्व आदि सद्‌गुण तुम में पूर्ण रूप से विराजमान हैं। तुम वास्तव में नेतृत्व के योग्य हो। किन्तु भगवान् की इच्छा जान लेना भी आवश्यक है। इस पर हमने दो चिट्ठियाँ लिखीं। एक में लिखा था कि हमारा यज्ञ सफल होगा, दूसरी में लिखा था असफल!

चिट्ठियों की घड़ी कर के विजया से कहा कि भगवती विंध्यवासिनी का नाम स्मरण कर एक चिट्ठी उठाओ। उसने जो चिट्ठी उठाई, उसमें लिखा था—सफलता मिलेगी। अब मुझे विश्वास हो गया है कि विन्ध्यवासिनी का आशीर्वाद हमारे साथ है।

प्राण—इसमें भी क्या कोई सन्देह की आवश्यकता थी ?

छत्रसाल—सन्देह ! सन्देह बहुत कुछ था और बहुत कुछ है। बहुत प्रयत्न करने पर भी मैं अभी तक ३५ घुड़सवारों और ३०० पैदल सिपाहियों से अधिक की सेना एकत्र न कर पाया हूँ। इतनी सी सेना के बल पर ही हमें मुग़लों की विशाल शक्ति से लोहा लेना है।

अंगद—हमें कुछ दिन और प्रतीक्षा करनी चाहिए, कुछ और सैन्य-संग्रह कर लेना चाहिए।

छत्रसाल—और सैन्य संग्रह ! क्या तुम नहीं जानते, दादा, कि हम कंगालों के पास इतनी सी सेना का पेट भरने के लिए भी धन नहीं है। इन सैनिकों को काम पर लगाये बिना हम इन्हें भी खो देंगे। इसलिए आज हमारा यज्ञ प्रारम्भ हो ही जाना चाहिए। जब तक हम कुछ कर न दिखावेंगे तब तक कोई हमारा अनुगामी न बनेगा। पहले हमें उद्योग प्रारम्भ करना चाहिए। उसके पश्चात् लोग समझेंगे कि वास्तव में हम कुछ करना चाहते हैं, और कुछ कर भी सकते हैं।

प्राणनाथ—छत्रसाल ! तुम सोलहों आने ठीक कहते हो। स्वाधीनता की साधना उपकरणों की मुहताज नहीं होती, तुम्हें भूमि में

बीज डालना चाहिए, समय का पानी पड़ने से वह फूट निकलेगा। और क्रमशः फूलेगा और फलेगा।

छत्रसाल—आओ प्यारे वीरो, आज हम सब एक महान् प्रतिज्ञा के बंधन में बँध जावें। देवी विंध्यवासिनी के आगे हम विशुद्ध हृदय से शपथ लें कि हम सांसारिक माया-मोह को छोड़कर प्राणों का भय त्याग कर जन्मभूमि की स्वाधीनता के लिए उद्योग करेंगे। या तो हम सफलता प्राप्त करेंगे या लक्ष्य की साधना में प्राणों का उत्सर्ग कर देंगे।

सब—हम देवी विंध्यवासिनी को साक्षी करके प्रतिज्ञा करते हैं कि हम सांसारिक माया-मोह और प्राणों के भय को छोड़कर जन्मभूमि की स्वाधीनता के लिए उद्योग करेंगे, या तो सफलता प्राप्त करेंगे या लक्ष्य की साधना में प्राण उत्सर्ग कर देंगे।

प्राणनाथ—छत्रसाल, जब तुम केवल एक वर्ष के थे, तब स्वर्गीया लालकुँवरि देवी तुम्हें यहाँ लाई थीं। तब मैंने देवी विंध्यवासिनी की ओर से तुम्हें आशीर्वाद दिया था, कि तुम्हारे हाथों मातृभूमि के बंधन कटेंगे। अपनी वह भविष्य-वाणी मुझे अब चरितार्थ होती नज़र आती है। आज मेरे आनंद की सीमा नहीं है।

(सुजानसिंह का प्रवेश)

बलदिवान—कौन ? सुजानसिंह !

छत्रसाल—ओड़छे के महाराज !

अंगद—हीरादेवी का पुत्र ! (तलवार तानते हैं)

सुजान—मैं प्रस्तुत हूँ अंगदराय जी, यदि मेरे सिर को देवी

के चरणों पर चढ़ा देने से आपका लक्ष्य सिद्ध होता हो तो मेरा यह सिर उपस्थित है। (सिर झुकाता है) आप एक क्षण का भी विलंब न कीजिए, अन्यथा शांत चित्त से मेरी बात सुन लीजिए।

प्राणनाथ—नहीं-नहीं, उत्तेजना की आवश्यकता नहीं है। अंगदराय, तलवार म्यान में करो।

सुजानसिंह—(सिर उठाकर) याद रखना अंगदराय, रुद्रप्रताप के वंशज शत्रु के आगे कभी सिर नहीं झुकाया करते। वे लाखों के आगे भी, विना युद्ध किये जीते-जी आत्म-समर्पण नहीं करते। किंतु भाइयों के आगे, देश के पुजारियों के आगे, स्वतन्त्रता के साधकों के सम्मुख सुजानसिंह का मस्तक सदा झुका हुआ है।

बलदिवान—आज हम क्या सुन रहे हैं? सर्पिणी का बच्चा आज अमृत-वर्षा कर रहा है!

सुजान—माँ का अपमान न करो बलदिवान! उन्होंने जो अपराध किये हैं, उनके लिए मैं आप सबसे क्षमा माँगता हूँ। आप विश्वास रखिये कि काका चंपतरायजी और काकी लाल कुँवरि का महान् बलिदान व्यर्थ न जाएगा। माँ हीरादेवी भले ही आज भी महेवा वंश से द्वेष रखती हों, किंतु उनका पुत्र सुजान-सिंह आपके स्वाधीनता-संग्राम में साथ देगा। वह मातृ-भूमि के लिए माँ का स्नेह खोने को तैयार है, ओड़छा का सिंहासन ठुकराने को तैयार है।

प्राणनाथ—धन्य हो सुजानसिंह! चंपतराय और लालकुँवरि का बलिदान आज तुम्हारे हृदय की निर्मलता में बोल रहा है।

महेवा और ओड़छे के तारुण्य और तेज का यह मिलन बुन्देलखंड की स्वाधीनता को कितने निकट ले आया है।

सुजान—कल ओड़छा पर औरंगज़ेब की आज्ञा से फ़िदाईख़ाँ आक्रमण करने आ रहा है। यदि केवल ओड़छे की सम्पत्ति का प्रश्न होता, तो मैं चुप रहता, किंतु यह बुन्देलखंड की गौरव-रक्षा का प्रश्न है। बोलो छत्रसाल! तुम अपने बुज़ुर्गों की गद्दी को मुग़लों-द्वारा अपमानित होने देने को तैयार हो?

छत्रसाल—नहीं, कदापि नहीं। भैया सुजान, मैं जिस महान् अनुष्ठान के लिए अपने रक्त का प्रत्येक कण निछावर करने को निकला हूँ उसमें पुराने ईर्षा-द्वेषों को कोई स्थान नहीं। दो जानी दुश्मनों के पुत्र, किंतु एक ही जन्मभूमि की संतान देश की स्वाधीनता के लिए प्राणोत्सर्ग करने की प्रतिज्ञा करते हुए प्रेम से गले मिलेंगे। (दोनों गले मिलते हैं)

सुजानसिंह—(छत्रसाल से गले मिलने के बाद, विन्ध्यवासिनी देवी के चरणों में दंडवत् करके) देवि, मुझे प्रकाश दो, साहस दो, और बल दो कि मैं प्रलोभनों को ठुकरा कर देश के दीवानों के दल में शामिल हो सकूँ। (दंडवत् करके उठते हैं)

प्राणनाथ—अब आरती कर ली जावे!

(छत्रसाल आरती करते हैं)

सब—(आरती गाते हैं)

विंध्यवासिनी, देवि, कराली,
सिंहवाहिनी हे असिवाली!

बल-विक्रम-पौरुष की जन्मदायिनी माता !
शिव का डमरू तेरा अविरल गौरव गाता !
तव चरणों पर यम युग-युग से शीश झुकाता !
विश्व-वंद्य, हे दुर्गा, काली,
विंध्य-वासिनी देवि कराली !
हृदय-रक्त से बुंदेलों ने पाँव पखारे,
तभी बने हैं वे तेरी आँखों के तारे !
रिपु से लोहा लेते तेरे शूर सहारे !
पिला रही तू बल की प्याली,
विंध्यवासिनी देवि कराली !
विंध्याचल की कठिन कटीली पर्वत-माला,
यहाँ साधना-दीप सुतों ने तेरे बाला !
रहे प्रज्वलित बुंदेलों के उर की ज्वाला !
अमर बुँदेला-जाति निराली,
विंध्यवासिनी, देवि कराली !

[पटाक्षेप]

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[स्थान—ओड़छा के रामराजाजी के मंदिर का बाहरी द्वार। वकीखाँ और एक पठान सैनिक का प्रवेश]

वकीखाँ—यही ओड़छा का वह मशहूर मंदिर है, जिस पर फ़िदाईखाँ आज रात को हमला करेगा। मुझे एक सच्चे मुसलमान की हैसियत से अफ़सोस और शर्म है कि औरंगज़ेब के इस्लामी जोश ने मुसलमानों को ग़लत रास्ते पर चला दिया है। असली मज़हब तो है नेकी करना और खुदग़रज़ी से बचना; न ग़रीबों को सताना और न मज़बूतों के आगे सर झुकाना। एक लफ़्ज़ में 'इन्सानियत' ही सच्चा मज़हब है। मैं तो समझता हूँ कि अकबर और दारा मज़हब के ज़्यादा पाबंद थे बनिस्बत इस्लाम-परस्ती का झूठा ढिंढोरा पीटने वाले औरंगज़ेब के।

सैनिक—आप ठीक कहते हैं, वकीख़ाँ साहब! आपने बड़ी ऊँची तबीयत पाई है।

वकीखाँ—मैं अपने मुट्ठी भर साथियों को ले कर, बुंदेलखंड की पहाड़ियों में जो तमन्ना लिए घूमता-फिरा हूँ, उसके पूरे होने के दिन अब आ गये हैं। चंपतराय के लड़के छत्रसाल और अंगदराय और उनके चचेरे भाई वलदिवान ने औरंगजेब के ख़िलाफ़ तलवार उठाई है। मैंने भी उनका साथ देने का इरादा किया है।

सैनिक—लेकिन क्या वे लोग एक मुसलमान का यक़ीन कर के उसे अपने साथ लेंगे ?

वकीखाँ—क्यों न लेंगे ! वे शहीदे-मुल्क चंपतराय के वेटे हैं। उन चंपतराय के, जिन्होंने वहादुरखाँ कोका और सेहुड़ाँ के दलेलखाँ से पगड़ी वदली थी। उनके दिल में हिन्दू-मुसलमान का ख़याल ही न था। मज़लूम की जानिव से ज़ालिम के ख़िलाफ़ खड़ा होना ही उनकी ज़िंदगी का मक़सद था। वही उसूल छत्रसाल का भी है। मेरी हस्ती ही क्या है और अभी छत्रसाल की भी ताक़त क्या है, लेकिन फिर भी सचाई के लिए जान देने का फ़ख्र हासिल करने में वकीखाँ कभी न चूकेगा।

सैनिक—आपने कहा था कि छत्रसाल आज यहाँ आवेंगे।

वकीखाँ—हाँ, वे फ़िदाईखाँ के हमले से ओड़छा की हिफ़ाजत करने लिए आज यहाँ आ रहे हैं।

सैनिक—चंपतराय को मरहूम पहाड़सिंह और हीरादेवी ने वेहद तकलीफें दी थीं। हीरादेवी तो साँपिन की तरह हमेशा उनकी जान की गाहक ही वनी रही। छत्रसाल को भी पैदा होने के दिन

से उसने जंगल-जंगल मारे-मारे फिरने को मजबूर किया। आज उसी की मदद को छत्रसाल ओड़छे आ रहे हैं। ताज्जुब की बात है!

यकीखाँ—हीरादेवी के बेटे सुजानसिंह ने विंध्यवासिनी के मंदिर में बुंदेलखण्ड की आज़ादी के लिए छत्रसाल का साथ देने की कसम खाई है।

सैनिक—और छत्रसाल भी उन पर यक़ीन ले आये? क्या उन्हें नहीं मालूम कि एक दिन सुजानसिंह के वालिद पहाड़सिंह ने भी उनके वालिद चंपतराय से ऐसे ही अल्फ़ाज़ कहे थे। बाद में जो कुछ हुआ वह सब जानते हैं।

यकीखाँ—यक़ीन न कर के सारी दुनिया को दुश्मन बनाये रखने से क्या फ़ायदा? जब तक ओड़छा मुग़लों का दोस्त था तब तक महेवावाले उनके दुश्मन थे। हीरादेवी भले ही खानदान की इज्ज़त को तलाक़ दे दे, लेकिन चंपतराय की औलाद इतनी बेग़ैरत नहीं हो सकती। वह अपना फ़र्ज़ कभी नहीं भूलेगी। वह ख़ानदान की आन रखने के लिए ओड़छा के दुश्मनों से ज़रूर लोहा लेगी।

सैनिक—वाकई छत्रसाल जैसे दरिया-दिल नौजवान हिंदुस्तान में बहुत थोड़े होंगे।

(छत्रसाल और सुजानसिंह का प्रवेश)

यकीखाँ—ओड़छा के महाराज सुजानसिंह और बुंदेलखंड की आज़ादी के आफ़ताब महाराज छत्रसाल के क़दमों में यकीखाँ का सलाम कबूल हो।

सुजान—कौन वकीखाँ डाकू !

वकीखाँ—पहचान के लिए यह नाम ज़रूरी हो गया है, मगर अफ़सोस कि असलियत तक आज तक कोई नहीं पहुँचा। जो छोटे-छोटे डाके डालते हैं, वे डाकू कहलाते हैं, मगर जो हज़ारों लाखों गरीब आदमियों का खून चूस कर सलतनतें कायम करते हैं, वे बादशाह समझे जाते हैं ! फर्क सिर्फ छोटाई-बड़ाई का है। खसलतों का नहीं।

छत्रसाल—अच्छा, यह तो बतलाइए कि आप यहाँ किस लिए आये हैं !

वकीखाँ—आप को अपनी ख़िदमतें नज़र करने, बुंदेलखंड की आज़ादी के जंग में आपका साथ देने की इजाज़त लेने।

सुजान—बुंदेलखण्ड की आज़ादी से तुम्हें ताल्लुक !

वकीखाँ—हमें ताल्लुक क्यों नहीं? बुंदेलखण्ड क्या सिर्फ बुंदेलो का है ? क्या यह ज़मीन सिर्फ हिन्दुओं को दाना-पानी देती है, हम मुसलमानों को नहीं ? मज़हब के नाम पर मुल्क के टुकड़े न करो, सुजानसिंह ! जिस मुल्क में हम पैदा हुए, जिसकी मिट्टी में हम खेले-कूदे, जिसके आबोदाना से हम पले, उसकी आज़ादी से क्या हमारा कोई ताल्लुक नहीं ? क्या उसकी आन हमें जान से प्यारी नहीं हो सकती ? वकीखाँ ने डाके डालने को नहीं, ज़ालिम औरंगज़ेब को सज़ा देने के लिए तलवार पकड़ी है। औरंगज़ेब बादशाह है, उसके पास दौलत है, फौज है, वह तख़्तेताऊस पर बैठ सकता है, इसलिए वह बादशाह कहलाता है। वकीखाँ गरीब

है, उसके बाजुओं में ताकत है, दिल में हौसला है, लेकिन उसके पास दौलत नहीं, फौज नहीं, इसलिए उसे जंगलों में छिपकर रहना पड़ता है। बस इसीलिए वह डाकू कहा जाता है। बोलो छत्रसाल! क्या तुम भी मुझे डाकू कहकर नफ़रत की नज़र से देखोगे, क्या मुल्क की आज़ादी के मुबारिक जंग में तुम मुझे अपने साथ न लोगे ?

छत्रसाल—क्यों नहीं वकीखाँ! शिवाजी ने जब महाराष्ट्र को स्वतन्त्र करने के लिए तलवार पकड़ी थी तब साम्राज्यवाद ने उन्हें भी डाकू कह कर पुकारा था, पिताजी को भी वे लोग आख़िर तक डाकू ही कहते रहे। छत्रसाल और वकीखाँ भी अगर अपने मुल्क की ख़ातिर डाकू कहावें, तो इसमें लज्जा की कोई बात नहीं।

सुजानसिंह—मुझे क्षमा करो, वकीखाँ! मैंने तुम्हें ग़लत समझा था।

वकीखाँ—आप हमारे राजा हैं, आप को सब कुछ कहने का हक़ है। और फिर अब तो पारस का साथ देकर आप कुंदन बन गये हैं। आपने माँ के मोह को ठुकराकर मुल्क के दीवानों का साथ दिया है। यह क्या किसी छोटी तबीयत के आदमी के लिए मुमकिन है ?

सुजान—मेहरबान दोस्त! तुम जैसा साथी पाने पर हमें गर्व है। चलो, हमारे साथ चलकर हमारे राज-महल को कृतार्थ करो।

वकीखाँ—मैं यहाँ से अभी कहीं न जाऊँगा महाराज ! मुझे मालूम हुआ है कि फ़िदाईखाँ ने इस मंदिर को तुड़वाने का इरादा किया है। उसके इस इरादे से सारी मुस्लिम कौम का सर नीचा हो रहा है। मैं अपनी जान देकर भी इस मंदिर की रखवाली करूँगा । मेरे आदमी आने ही वाले हैं।

छत्रसाल—अच्छी बात है, आप पर मंदिर की रक्षा का काम हम सौंप देंगे, लेकिन मैं कुछ और बातें भी आपसे करना चाहता हूँ । आप ज़रा हमारे साथ चलिए ।

(तीनों का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[दिल्ली के लाल क़िले में एक उद्यान में औरंगज़ेब और जहानारा घूमते हुए बात कर रहे हैं]

औरंगज़ेब—ताज्जुब है जहानारा ! मुग़ल-सल्तनत के ख़िलाफ़ मराठों और राजपूतों की छोटी-छोटी ताकतें सर उठाने का हौसला कैसे करती हैं !

जहानारा—इसमें ताज्जुब की क्या बात है भाई ! जब शिकारी परिंदों को जाल में फँसाता है और उन्हें यह मालूम होता है कि

यह जाल है तब परिंदे पर मारते ही हैं। इंसान हो या हैवान, गुलाम बनकर रहना किसी को पसंद नहीं।

औरंग०—अगर ऐसा है तो तुम्हारे पिंजरे की मैना दरवाज़ा खुला छोड़ देने पर भी क्यों नहीं उड़ जाती ?

जहानारा—वह अपनी ताक़त और हस्ती को भूल गई है। वह साँस ज़रूर लेती है, मगर इतने ही से उसे जानदार नहीं कहा जा सकता। उस मैना जैसे भी बहुत-से इन्सान इस दुनिया में हैं, जिनकी नस-नस में गुलामी घर कर चुकी है। वे जीते-जी मुरदों से भी गये बीते हैं।

औरंग०—अच्छा तो तुमने अपनी मैना को क्यों कैद कर रक्खा है ?

जहानारा—बुढ़ापे में भूलें करने वाले इन्सान को क्या हक है कि वह किसी को बचपन की भूल पर एतराज़ करे ? मुझे उस बेचारी की हालत पर सख्त अफ़सोस है। मेरा जी चाहता है कि मैं उसे आज़ाद कर दूँ। लेकिन वह कमबख्त जाती ही नहीं। उसको कुछ मुझ से और कुछ अपनी गुलामी से मुहब्बत हो गई है।

औरंगज़ेब—अच्छा जहानारा, तुम्हारी राय में इसकी क्या वजह है कि मुगल सल्तनत के पिंजरे से हिंदुस्तान की मैना अब उड़ना चाहती है।

जहानारा—इसलिए कि उसे इस पिंजरे के मालिक से मुहब्बत नहीं हुई और अभी वह अपने परों की ताक़त को नहीं

भूली है। तुम एक दिन को भी पिंजरे का दरवाज़ा खोल दो, फिर देखो कि वह मैना तुम्हारी पहुँच से कितनी दूर आज़ादी के आसमान में उड़ जाती है।

औरंग०—जहानारा, तुम मुझे मुहब्बत करना सिखा सकती हो ?

जहानारा—मोहब्बत करना तुम जानते थे औरंगज़ेब ! मज़हबी तअस्सुब के पागलपन ने उस पर काला परदा डाल दिया है। हिन्दुओं पर जज़िया लगाकर तुमने मुहब्बत का रास्ता बंद कर दिया है। मुसलमानों की तादाद बढ़ाने की धुन में तुमने मुग़ल सल्तनत की जड़ में घुन लगा दिया है।

औरंग०—मज़हब के लिए अगर सल्तनत से भी हाथ धोना पड़े तो औरंगज़ेब को अफ़सोस न होगा।

जहानारा—तुम ज़िंदगी भर ग़लत रास्ते पर चले हो औरंगजेब ! मुग़ल-सल्तनत की नींव डालनेवाले बहादुर बाबर शाह ने इस्लाम को फैलाने के लिए हिन्दुस्तान में क़दम नहीं रखा था—उनकी हवस थी यहाँ सल्तनत क़ायम करना। तुम बुज़ुर्गों का रास्ता भूल गये हो, भैया ? सल्तनतें तलवार से जीती जाती हैं और मुहब्बत से कायम रखी जाती हैं। बादशाह को रियाया का ख़ादिम बनना पड़ता है।

औरंगज़ेब—रियाया का ख़ादिम !

जहानारा—हाँ भैया, रियाया का ख़ादिम। बादशाह दुनिया सबसे बड़ा ख़ादिम, सबसे बड़ा गुलाम है। उसके लिए

फ़रायज़ की जितनी मोटी और मज़बूत ज़ंजीरें हैं, उतनी दुनिया के बड़े-से-बड़े गुनहगार के लिए भी नहीं बनाई जा सकतीं। जिस दिन वह इस बात को भूल जाता है; सल्तनत की इमारत गिरने लगती है। मुगल सल्तनत की हालत आज तुम्हारी ग़फ़लत से दिन पर दिन अवतर होती जा रही है। मगर तुम अभी तक मदहोशी में हो। जिस दिन तुमने भाइयों का ख़ून किया था और अब्बा को गिरफ़्तार किया था, मैंने उसी दिन समझ लिया था कि मुग़ल सल्तनत की उम्र कम रह गई है। तुम कितने बहादुर हो औरंगज़ेब! काश कि तुम कुछ रहमदिल और समझदार भी होते! तुम अगर चाहते तो मुग़ल सल्तनत को आसानी से दुनिया के एक किनारे से दूसरे किनारे तक पहुँचा सकते थे, लेकिन...

औरंग—लेकिन क्या...

जहानारा—कुछ नहीं। हम औरतें सिर्फ़ मुहब्बत करना जानती हैं और वही कर सकती हैं। हमें सल्तनत के मामलों में पड़ना ज़ेबा नहीं है। अब मैं जाती हूँ।

औरंग—नहीं बहन, अभी मत जाओ। कुछ ठहरो। तुम अपने इस भाई से इतनी नफ़रत करती हो कि दो घड़ी भी उससे बात करना पसंद नहीं करतीं।

जहानारा—नहीं औरंगज़ेब, मुझे तुम पर रहम आता है। तुम ख़ूँख़्वार जानवर बन गये हो, तुम से कोई मुहब्बत नहीं करता। तुमने काले कारनामों की एक दीवार अपने सामने खड़ी कर रखी है। बोलो भैया, कोई तुम्हें कैसे प्यार करे? और जिसे कोई प्यार

नहीं करता, वह ज़िंदा ही कैसे रहता है, यह निहायत ताज्जुब की बात है !

औरंग—मुझे कोई प्यार नहीं करता, इसीलिए मैं रोज़ नई नई लड़ाइयाँ शुरू करके अपनी सूनी और वेलज्ज़त ज़िंदगी को काम में लगाये रखता हूँ। आज मराठों से, कल राजपूतों से और परसों बुंदेलों से लोहा लेते रहना ही अव मेरा दिल-वहलाव हो गया है। जिस तरह शरावी शराव पिये विना नहीं रह सकता, उसी तरह मैं भी विना जंग किये नहीं जी सकता।

जहानारा—तुम्हारी हालत वाक़ई रहम के क़ाविल है, भैया !

औरंगज़ेव—रहम ! नहीं, औरंगज़ेव को उसकी जरूरत नहीं। ग़लत या सही, उसने जो रास्ता पकड़ा है, उससे वह हट नहीं सकता। जहानारा, अव मैं वूढ़ा हो चला हूँ। इस उम्र में शिवाजी की वग़ावत को दवाने और दूसरी दक्खिनी रियासतों को मुग़ल सल्तनत में मिलाने के लिए दक्खिन जाना लाज़िमी होगया है। लेकिन इधर चंपतराय के लड़कों ने बुंदेलखंड में वग़ावत के वीज वो दिये हैं। ग्वालियर के सूवेदार फ़िदाईखाँ को मैंने ओड़छा पर चढ़ाई करने को भेजा था। ताज्जुव की वात तो यह है कि हमेशा के दुश्मन महेवा और ओड़छा, इस मौक़े पर यकायक मिल गये और फ़िदाईखाँ को मुँह की खानी पड़ी। फ़िदाईखाँ को हराकर उसने धँधेरखंड के क़ुँवरसेन पर हमला करके उसे गिरफ़्तार कर लिया। अव उसने भी अपने भाई की लड़की की छत्रसाल से शादी करके उसकी मातहती कवूल कर ली है। सिरौंज का

थानेदार छत्रसाल को दबाने के लिए गया तो उसने हमारी सारी फ़ौज काट डाली। उसने मुग़ल हद के कई गाँव भी लूट लिये। लेकिन ये उलझनें मैं जल्द ही सुलझा लूँगा और वह वक्त नज़दीक है जब छत्रसाल को भी अपने बाप चंपतराय की तरह तकलीफें उठा कर कुत्ते की मौत मरना पड़ेगा।

जहानारा—मैं तुम्हारी रियासत में दस्तंदाज़ी नहीं करना चाहती, भैया! लेकिन जब इन्सानियत को भी भूल जाते हो, तो मुझे ज़रूर रंज होता है। और जब मैं तुम्हारी भूलों से मुग़ल सलानत की नींव खोखली होते देखती हूँ तो कभी कभी जी चाहता है कि मैं भी तुम से बग़ावत करूँ। बुंदेलों-जैसी बहादुर कौम को तुम आसानी से दोस्त बना सकते हो। हिन्दुस्तान के एक छोटे-से मुल्क को आज़ादी देकर तुम अपनी सल्तनत क़ायम रखने के काम में बहुत बड़ा मददगार पैदा कर सकते हो, तुम्हें एक सच्चे इन्सान की तरह तअस्सुब को तर्क कर देना चाहिए।

औरंगज़ेब—औरतों की अक़्ल से सल्तनतें नहीं चला करतीं, जहानारा! तुम जिसे तअस्सुब कहती तो वह मुग़लों की ताक़त और सल्तनत का रोब है। वह जरा भी कम हो, इसे मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। छत्रसाल को मैं इस तरह मसल दूँगा, जिस तरह···।

जहानारा—जिस तरह शिवाजी को मसला था······

औरंग—मुझे चिढ़ाओ मत जहानारा। याद रखो, मैं शिवाजी

को भी एक दिन क़ाबू में लाकर मानूँगा। उसीने तो छत्रसाल को वग़ावत करने पर उतारू किया है। मैंने रणदूलहखाँ को छत्रसाल का सर कुचलने के लिए भेजना तय किया है। अच्छा अब मैं जाता हूँ। मुझे अभी वहुत काम है। (प्रस्थान)

जहानारा—पागल औरंगज़ेव ! तुमने अपनी ज़िन्दगी को ख़्वाहमख़्वाह दोज़ख वना लिया है। तुम वहादुर हो, सिर्फ़ तलवार के ज़ोर से तुम अपनी सलतनत को कायम रख सकते हो, लेकिन यह तअस्सुव, यह जहालत और वेरहमी उस सलतनत को किसी दिन ले डूवेगी ! तुम्हारे वाद क्या होगा, इसे तुम नहीं सोच सकते ! अंधे हो—मदहोश हो !

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान—वासा ग्राम के निकट का एक मैदान। छत्रसाल और वलदिवान]

वलदिवान—'छत्रसाल' नाम ही कुछ ऐसा है ! उसमें कुछ जादू भरा होता है भैया ! तुमने वूँदी-नरेश छत्रसाल हाड़ा को नहीं देखा। वे एक चलता-फिरता पहाड़ थे। दारा की ओर औरंगज़ेव से उन्होंने जो युद्ध किया था, वह मैंने देखा था।

मैं भी काका चंपतरायजी के साथ उस युद्ध में शामिल हुआ था। मुझे बचपन से अपने साहस और बाहु-बल पर अभिमान रहा है, किंतु उस अभूत-पूर्व शौर्य की चकाचौंध से मेरी आँखें विस्मित हो गई थीं। तोपें गोले बरसा रही थीं, तीरों की घनघोर बौछार हो रही थी, बंदूके चल रही थीं, किंतु वे रण के दीवाने अपनी थोड़ी-सी राजपूत सेना के साथ इतनी तीव्र-गति से औरंगजेब के हाथी की ओर बढ़ते गये मानों कोई तीर जा रहा हो। उस युद्ध में वे मारे गये, किंतु उनका नाम अमर हो गया।

छत्रसाल—उनके वंशज भी आन के पक्के निकले, उन्होंने अभी तक औरंगजेब को बादशाह नहीं माना। हमारी तरह वे भी बूँदी के राज-महलों के बदले जंगलों में रह कर स्वाभिमान का दीपक जलाये हुए हैं।

बलदिवान—इस देश के प्राण कुछ जागते-से तो जान पड़ते हैं; किंतु अभी जहाँ-तहाँ छोटी-छोटी चिनगारियाँ जल रही हैं। कोई एक ऐसा आँधी का झोंका आवे जो इन को मिलादे तो इनकी लपटों में निरपराधों के रक्त से सिंचा हुआ दिल्ली का साम्राज्य भस्मसात् हो जाय।

छत्रसाल—उधर राजपूताना में भी विद्रोह का झंडा गड़ गया है। औरंगजेब ने राजा जसवंतसिंह को अफ़गानिस्तान भेज कर मरवा डाला और उनके बड़े पुत्र को जहरीले कपड़े पहना कर उसके प्राण ले लिये। उसके बाद उनकी महारानी महामाया तथा छोटे कुमार अजितसिंह को भी दिल्ली में बंदी करने का प्रयत्न किया;

किंतु उस कठिन प्रसंग पर राजपूतों का महातेज एक वार फिर प्रकट हुआ। वीर दुर्गादास और महारानी कुमार को लेकर शत्रु-सेना के जन-समुद्र में से तलवार चलाते हुए निकल गये। अहा, वह दृश्य कितना भव्य होगा, जिसके स्मरणमात्र से प्राणों में स्फूर्ति जाग उठती है! हम भारतवासी बल और साहस में संसार में किससे कम हैं? हममें केवल संगठन की कमी है। हमने संपूर्ण देश को एक राष्ट्र के रूप में देखना नहीं जाना। हम दीवाने हैं; अपने-अपने वंशों की मर्यादा और अपने छोटे-छोटे राज्यों की रक्षा के प्रयत्न में हम संपूर्ण देश की स्वतन्त्रता को खो बैठे हैं।

बलदिवान—सच है भैया! इसी बासा के जागीरदार केशव-राय दुरंगी को देखो न! स्वाधीनता के युद्ध में तुम्हारा नेतृत्व स्वीकार करने में उसे अपने वंश की अप्रतिष्ठा प्रतीत होती है! वह मूर्ख इस पवित्र अनुष्ठान में सहायता करने के स्थान पर उसके साधकों से युद्ध करने आ रहा है।

छत्रसाल—अपने भाइयों के खून से हाथ रँगते हुए पश्चात्ताप से मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है, किंतु, क्या करूँ, दूसरा कोई मार्ग ही नजर नहीं आता। वाह्य आक्रमण से लोहा लेने के पहले आंतरिक संगठन कर लेना अत्यंत आवश्यक है। रणदूलहखाँ के सेनापतित्व में, हमारे विरुद्ध दिल्ली की विशाल सेना चल पड़ी है। मैं चाहता हूँ कि उसके आगमन के पहले ही यहाँ के देश-द्रोहियों को समाप्त कर दिया जाय।

बलदिवान—सुजानसिंह की मृत्यु के करण हमारी कठिनाइयाँ बहुत बढ़ गई हैं। ओड़छा के वर्तमान राजा जसवंतसिंह के अतिरिक्त चंदेरी के देवीसिंह और सिरौंज और कौंच के राजा भी हमारे विरुद्ध हैं।

छत्रसाल—निश्चय ही भैया, हमारा पथ कंटकों से भरा हुआ है। बहुत प्रयत्न करने पर भी हम इन राजाओं का सहयोग नहीं पा सके, नहीं पा सकते।

(नेपथ्य में गान)

सैनिक, अपना बल पहचानो !
साथ न कोई तुम एकाकी !
चिंता क्या है, निशा अमा की !
जब तक तन में जीवन बाकी,
बढ़े चलो माँ के दीवानो !
सैनिक अपना बल पहिचानो !

अम्बर में तुम महल बनाओ,
ज्वालागिरि पर सेज सजाओ,
तूफानों में नाव चलाओ,
कभी न कोई बाधा मानो !
सैनिक अपना बल पहचानो !

[प्राणनाथ प्रभु, विजया और कुछ सैनिकों का प्रवेश विजया उपर्युक्त गान गा रही है, छत्रसाल और बलदिवान प्राणनाथ प्रभु के पैर छूते हैं]

प्राणनाथ—बुंदेलों के साहस और शौर्य के अधिनायकों की यह जोड़ी बुंदेलखंड को स्वतन्त्र करने में सफल हो !

छत्रसाल—कहिए गुरुदेव, आप का आगमन कहाँ से हो रहा है ?

प्राणनाथ—मेरा और विजया का एक ही मार्ग है, एक ही कर्तव्य है—माँ पर प्राण न्योछावर करनेवाले दीवानों को एकत्र करने के लिए वन-वन और घर-घर घूमना। हम सर्वत्र यह अनुभव करते हैं कि जनता हृदय से हमारा साथ देने को तैयार है, किन्तु वह अपने राजाओं के आतंक से भयभीत है। जो व्यक्ति हमसे बात करता है, दूसरे ही दिन से उस पर राज-कर्मचारियों के अत्याचार आरम्भ हो जाते हैं। फिर भी ऐसे वीर युवक निकल ही आते हैं जो हमारे महान् अनुष्ठान में सम्मिलित होने को तैयार हैं। तुम्हारे स्वर्गीय पिता के पुराने मित्र और साथी भी धीरे-धीरे संगठित हो रहे हैं। वे फिर प्राणों की बाजी लगाने को तैयार हैं। गोविंदराव जैतपुर वाले, कुँवर नारायणदास, सुंदरमन प्रमार, राममन दौआ, मेघराज पड़िहार, धुरमांगद बख्शी कायस्थ, किशोरीलाल, लच्छे रावत, मानशाह, हरवंश, भानु भाट, बंबल कहार और फत्ते वैश्य आदि न केवल हमारी सेना में सम्मिलित हुए हैं बल्कि वे और सेना एकत्र करने का भी यत्न कर रहे हैं। अच्छा यहाँ के क्या समाचार हैं ?

छत्रसाल—केशवराव दुरंगी ने हमारा साथ देना स्वीकार नहीं किया। मैंने दोनों की सेनाओं की मुठभेड़ में दोनों ओर से बुंदेलों

का नाश न कराकर बुंदेल खंड की शक्ति क्षीण न करने का ही निश्चय किया है।

विजया—अर्थात् तुम उसे देश-द्रोह का-दंड न दोगे! क्या तुम शिवाजी से यही दीक्षा लेकर आये हो? हमारे देश में तो देश-द्रोही पर दया करने का रिवाज़ नहीं है।

छत्रसाल—छत्रसाल अपने कर्तव्य को खूब जानता है, बहन! किंतु जब वह निर्दोष बुंदेले सैनिकों का, अपने भाइयों का, रक्त बहाए बिना ही इस समस्या को हल कर सकता है, तब उसे क्या आवश्यकता है कि वह उनकी हत्या का मार्ग ग्रहण करे?

प्राणनाथ—तब तुमने क्या करना सोचा है?

छत्रसाल—बासा के जागीरदार से मेरा इसी स्थान पर द्वन्द्व-युद्ध होगा। आज पता लग जायगा कि भवानी विंध्यवासिनी देश-द्रोहियों को जीवित रखना चाहती हैं या स्वतंत्रता के यज्ञ को आगे बढ़ानेवाले साधकों को।

बलदिवान—देखिए गुरुदेव, मैं भैया को समझाता हूँ, मगर ये मेरा कहना नहीं मानते। केशवराय पूरा दैत्य है। बड़ा अनु-भवी लड़ाका है। उससे द्वन्द्व में विजय पाना कठिन है। बुंदेल-खंड के सब से अधिक मूल्यवान् प्राणों की बाजी इस तुच्छ बात पर लगा दी जाय, यह मुझे बिलकुल पसंद नहीं। मैं फिर कहता हूँ, भैया छत्रसाल, मान जाओ। उससे मुझे द्वन्द्व-युद्ध करने दो। तुम पर संपूर्ण बुंदेलखंड का भविष्य निर्भर है, तुम जान बूझ कर हमारी आशा का दीपक बुझाने न जाओ।

छत्रसाल—नहीं भैया मेरा निश्चय नहीं बदल सकता। मैं नहीं समझता कि तुम मुझे इतना अधिक महत्त्व क्यों देते हो! यह तो गुलामी के विरुद्ध जनता का आंदोलन है। इसका नेतृत्व करने का हमी को नहीं प्रत्येक सैनिक को अधिकार है। इस समय मैं नेता हूँ, जो कार्य सब से अधिक संकट का होता है उसे नेता ही किया करता है। अतः मुझी को आत्म-बलिदान का प्रथम अवसर मिलना चाहिए। अगर तुम मुझे अवसर न दोगे तो मैं समझूँगा कि तुम चंपतराय और लालकुँवरि के पुत्र के बाहु-बल और रण-कौशल पर अविश्वास करते हो।

(केशवराय दुरंगी का प्रवेश)

केशवराय—जुहार छत्रसाल!

छत्रसाल—जुहार केशवरायजी!

प्राणनाथ—केशवरायजी, एक बार आप और विचार कर लीजिए। विदेशियों के कृपा-पात्र बन कर अपनी जागीर की रक्षा करने में आपका अपमान नहीं होता और छत्रसाल का नेतृत्व स्वीकार करने में......

केशवराय—सुनिए प्राणनाथजी, बुंदेले विचार करना नहीं जानते। वे तो सिर को हथेली पर लिये फिरते है। उनका निश्चय अटल होता है। यदि छत्रसाल मुझसे श्रेष्ठ हैं, नेता बनने के योग्य हैं, तो द्वंद्व युद्ध में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करें। मैं यह प्रबन्ध कर आया हूँ, कि यदि मैं इस द्वंद्व में मारा जाऊँ तो मेरी सेना [illegible]रा राज्य, मेरा सब कुछ, छत्रसाल का समझा जाय।

छत्रसाल—अच्छी बात है। मैं आपकी चुनौती स्वीकार करने को प्रस्तुत हूँ।

(म्यान तलवार से निकालते हैं। केशवराय भी तलवार निकालते हैं)

केशवराय—पहले तुम आक्रमण करो।

छत्रसाल—नहीं, पहले तुम।

(केशवराय तलवार का वार करते हैं, छत्रसाल बचा जाते हैं, लड़ते-लड़ते दोनों का प्रस्थान)

बलदिवान—वाह, कैसा प्यारा युद्ध हो रहा है! दोनों ही पक्के खिलाड़ी हैं। अरे यह क्या! छत्रसाल की छाती में बरछी लग गई! हाय, यह क्या अनर्थ हुआ! नहीं, मैं यह युद्ध अधिक न होने दूँगा। मैं जाकर अभी केशवराय का सिर धड़ से अलग किये देता हूँ।

विजया—ठहरो बलदिवान! अनुशासन ही का दूसरा नाम सेना है। सैनिक को हर हालत में नेता का कहना मानना चाहिए।

बलदिवान—अच्छा विजया, मैं युद्ध में हस्तक्षेप न करूँगा, किंतु मुझे छत्रसाल के पास तो रहना ही चाहिए। (प्रस्थान)

विजया—(देखकर स्वगत)—धन्य वीर छत्रसाल! तुम्हारी वीरता और रण-कौशल अद्भुत है। अहा! घायल अवस्था में भी केशवराय का काम-तमाम कर दिया। किंतु हाय, वे स्वयं भी घायल हो कर गिर पड़े। मैं अभी उन्हें डेरे पर ले जा कर उनकी शुश्रूषा का प्रबंध करती हूँ।

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[स्थान—गढकोटा। किले की दीवार पर बलदिवान खड़े हैं]

बलदिवान—चंपतराय यदि साहस और वीरता के बालारुण थे तो छत्रसाल प्रचण्ड मार्तंड हैं। उनकी प्रत्येक गति-विधि इसका प्रमाण दे रही है। मैंने उनसे कितना कहा कि केशवराय दुरंगी से मुझे द्वन्द्व युद्ध करने दो, किन्तु मृत्यु को प्रतिक्षण चुनौती देनेवाला उनका हृदय भला क्यों मानता! आत्म-बल की बाहु-बल पर विजय हुई और दुरंगी जैसे दैत्य को उन्होंने मार गिराया। और अब जब रणदूलहखाँ २०००० सेना और तोपें लेकर बुंदेलखण्ड पर चढ़ आया, तो उससे खुले मैदान में लोहा लेने का संकटमय कार्य भी अपने हाथ में लेकर, उन्होंने मुझे यहाँ गढ़-कोटा में भेज दिया है। उनकी वीरता इतनी सर्वव्यापी है कि मुझे अभी तक खुलकर तलवार की धार आजमाने का अवसर ही नहीं मिला। (तोपों की गर्जना होती है) हैं! यह क्या! धुएँ का पहाड़-सा उठ रहा है! मालूम होता है रणदूलहखाँ ने गढ़ पर आक्रमण कर दिया। तो क्या छत्रसाल पराजित हुए! आशंका से मेरा हृदय काँप रहा है। अब इस किले में रहना व्यर्थ है। मेरे पास सेना थोड़ी है, गढ़ में रह कर मैं शत्रु के दाँत खट्टे कर सकता हूँ, पर बाहर निकलकर तो जान ही देनी होगी। किन्तु, अब प्राणों का मोह क्यों? भैया छत्रसाल रक्षा के लिए···

(विजया का प्रवेश)

विजया—बलदिवान !

बलदिवान—विजया ! तुम आगई ! आज जीवन और मरण के सन्धिस्थल पर खड़ा होकर मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ।

विजया—इसका समय नहीं है बलदिवान ! यदि शीघ्र ही शत्रु का गतिरोध न हुआ तो उसकी तोपें गढ़ का विध्वंस कर देंगी।

बलदिवान—गढ़ की अब कोई आवश्यकता नहीं। मैं गढ़ का फाटक खोलकर बाहर जाकर शत्रु पर आक्रमण करूँगा। मेरे जीवन के अन्तिम क्षण आ पहुँचे हैं। विजया ! आज तो तुम्हें मेरे प्रश्न का उत्तर देना ही होगा ! क्या तुम्हारे हृदय में मेरे लिए कोमल स्थान...

विजया—ऐसी मधुर बात मुँह से न निकालो बलदिवान ! इस छल-प्रपंच और हिंसा-द्वेष से परिपूर्ण संसार के वातावरण से वे शब्द घायल हो जायेंगे।

बलदिवान—अच्छा, तो तुम्हारे मुख से मधुर उत्तर सुनने की अभिलाषा हृदय में लेकर ही मैं इस संसार से चला जाऊँगा। विदा दो विजया ! (तोपों का गर्जन) वह देखो, मेरे लिए निमंत्रण आ रहा है।

(गमनोद्यत होता है, विजया हाथ पकड़ लेती है)

विजया—कहाँ जाते हो ?

वलदिवान—बाहर ! वहाँ !

विजया—नेता की आज्ञा के विरुद्ध ! नहीं तुम्हें गढ़ में रहकर ही शत्रु-सेना का संहार करना होगा।

वलदिवान—किंतु भैया छत्रसाल का कोई समाचार नहीं मिला...

विजया—उसे जानने की तुम्हें कोई आवश्यकता नहीं। तुम अपना कर्तव्य पालन करो। तोपों से अग्नि-वर्षा करके शत्रु-सेना के हौसले पस्त कर दो।

वलदिवान—अच्छा तो अपनी तोपों को चरम वेग से गोले बरसाने का हुक्म दे आऊँ। (प्रस्थान)

विजया—वलदिवान ! तुम्हारे जीवन में आग लगा कर मैं तमाशा देख रही हूँ ! जब बचपन में हम साथ-साथ खेलते थे, तब उन नादान दिलों को क्या पता था कि गुलाम देश के युवकों और युवतियों के पास प्रेम करने को समय नहीं होता। कर्तव्य—केवल कर्तव्य—उन्हें अभिलाषाओं का खून करने को अहर्निश प्रेरित करता रहता है। (तोपों की गर्जना होती है) अहा ! हमारी तोपें भीषण अग्नि-वर्षा करने लगीं। (एक ओर गौर से देखकर) वाह वलदिवान, तुम्हारी मोरचाबंदी भी गजब की है। मुग़ल सेना में पहले ही हमले में खलबली मचती नजर आती है। (शाबाश)

(वलदिवान का प्रवेश)

वलदिवान—तुम अभी यहीं हो ! देखो कैसा सुंदर दृश्य है ! आज भवानी बिलकुल तृप्त हो जायगी। वर्षों बाद ऐसा सुअवसर

हाथ लगा है। बुंदेलखण्ड का अपमान करने वालों को बलदिवान आज भरसक दंड देगा, आज प्रतिशोध की प्रचण्ड ज्वाला कुछ शांत होगी। किंतु, (विचार-मग्न हो जाते हैं) छत्रसाल की कोई खबर नहीं।

(प्राणनाथ प्रभु का प्रवेश)

बलदिवान—(चरण छू कर आतुर स्वर में) गुरुदेव, कहिए छत्रसाल का क्या समाचार है ?

प्राणनाथ—चिंता न करो बलदिवान ! छत्रसाल पर विन्ध्यवासिनी की पूर्ण कृपा है। मुग़लों की सेना जब शाहगढ़ के समीप थी तब छत्रसाल ने एक समीपस्थ पहाड़ी की घाटी पर से गोलियाँ बरसाना आरंभ किया। दिल्ली की फ़ौज का पाँचवाँ भाग वहीं समाप्त हो गया। इस पर शत्रु-सेना ने घाटी पर चढ़ने का प्रयत्न किया, परन्तु छत्रसाल तो माँ के पेट से ही रण-कौशल सीखकर आये हैं, वे उसी समय वहाँ से दूर चले गये। रणदूलहखाँ ने समझा कि छत्रसाल गढ़-कोटा में घुस गये हैं, इसलिए उसने इधर आक्रमण कर दिया। छत्रसाल ने अवसर देखकर पीछे से आक्रमण कर दिया। अब शत्रु-सेना दोनों ओर से घिर गई है।

(बाहर शोर बढ़ता है)

विजया—वह देखो शत्रु भाग खड़े हुए।

(नेपथ्य में महाराज छत्रसाल की जय, बुन्देलखण्ड की जय, आदि का घोष)

प्राणनाथ प्रभु—आज प्रथम वार बुन्देलखण्ड ने मुग़लों की इतनी बड़ी संगठित सेना से खुले मैदान में सामना करके विजय प्राप्त की है।

(छत्रसाल का प्रवेश)

छत्रसाल—(प्राणनाथप्रभु के चरण छूकर) आपके आशीर्वाद से हमें पूर्ण विजय प्राप्त हुई है, हम शत्रुओं से प्रतिशोध लेने में समर्थ हुए हैं। रणदूलहखाँ परास्त होकर सागर की ओर भाग गया है। उसकी दस तोपें हमारे हाथ लगी हैं।

बलदिवान—धन्य हो, भैया! तुमने बुंदेलखण्ड का मुख उज्ज्वल कर दिया।

प्राणनाथ—आज बुंदेलखण्ड के आकाश में स्वतन्त्रता का अरुणोदय हुआ है। यह विजय हमारे भावी संग्रामों के लिए साहस-संचार का कार्य करेगी। हमें इसे अंतिम संघर्ष न समझना चाहिए, वास्तव में तो अब संघर्ष का प्रारंभ हुआ है। दिल्ली की शक्ति रक्तबीज का अवतार है। एक के बाद एक सेना हमारे ऊपर आक्रमण करती रहेगी। इसलिए हमें ज़रा भी समय खोने की गुंजाइश नहीं है। इस विजय ने जनता के हृदय में आत्मबल और आत्मविश्वास पैदा कर दिया है। जो बुंदेले पहले छत्रसाल का साथ देने में संकोच करते थे, वे भी अब निर्द्वन्द्व होकर स्वतंत्रता संग्राम में हाथ बँटाएँगे।

छत्रसाल—भैया बलदिवान! तुमने शत्रु-सेना पर गज़ब की [illegible]-वर्षा की थी। इस विजय का बहुत कुछ श्रेय तुम्हीं को है।

विजया—इसका वास्तविक श्रेय न तो छत्रसाल को है और न बलदिवान को। वह तो उन आज़ादी के दीवाने सैनिकों को है, जो प्राणों का मोह त्याग कर विशाल शत्रु-सेना पर टूट पड़े थे। प्राणनाथ प्रभु उनके हृदयों में वर्षों से जो भावना भरने का यत्न कर रहे थे, उसका परिणाम आज प्रकट हुआ है। भाड़े के टट्टू सिपाही क्या कभी इस वीरता से युद्ध कर सकते हैं।

छत्रसाल—तुम ठीक कहती हो बहन! जनता में जो स्वाधीनता की लहर प्रवाहित हो उठी है, वही छत्रसाल का वास्तविक बल है। अच्छा, चलो, विंध्यवासिनी के चरणों में प्रणाम कर आवें।

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान — दिल्ली का राज-महल। जेबुन्निसा अकेली]

जेबुन्निसा—(गारही है)

साकी अपना मज़हब आला!
देता जा प्याले पर प्याला!
जो उस मज़हब का दीवाना,
छोड़ेगा कब आँख दिखाना,
शिकवा करता रहे ज़माना!
उसने तो इस में विष डाला!

प्राणनाथ प्रभु—आज प्रथम वार बुन्देलखण्ड ने मुग़लों की इतनी वड़ी संगठित सेना से खुले मैदान में सामना करके विजय प्राप्त की है।

(छत्रसाल का प्रवेश)

छत्रसाल—(प्राणनाथप्रभु के चरण छूकर) आपके आशीर्वाद से हमें पूर्ण विजय प्राप्त हुई है, हम शत्रुओं से प्रतिशोध लेने में समर्थ हुए हैं। रणदूलहखाँ परास्त होकर सागर की ओर भाग गया है। उसकी दस तोपें हमारे हाथ लगी हैं।

वलदिवान—धन्य हो, भैया! तुमने बुंदेलखण्ड का मुख उज्ज्वल कर दिया।

प्राणनाथ—आज बुंदेलखण्ड के आकाश में स्वतन्त्रता का अरुणोदय हुआ है। यह विजय हमारे भावी संग्रामों के लिए साहस-संचार का कार्य करेगी। हमें इसे अंतिम संघर्ष न समझना चाहिए, वास्तव में तो अव संघर्ष का प्रारंभ हुआ है। दिल्ली की शक्ति रक्तवीज का अवतार है। एक के वाद एक सेना हमारे ऊपर आक्रमण करती रहेगी। इसलिए हमें ज़रा भी समय खोने की गुंजाइश नहीं है। इस विजय ने जनता के हृदय में आत्मवल और आत्मविश्वास पैदा कर दिया है। जो बुंदेले पहले छत्रसाल का साथ देने में संकोच करते थे, वे भी अव निर्द्वन्द्व होकर स्वतंत्रता संग्राम में हाथ बँटाएँगे।

छत्रसाल—भैया वलदिवान! तुमने शत्रु-सेना पर गजव की -वर्षा की थी। इस विजय का वहुत कुछ श्रेय तुम्हीं को है।

विजया—इसका वास्तविक श्रेय न तो छत्रसाल को है और न बलदिवान को। वह तो उन आज़ादी के दीवाने सैनिकों को है, जो प्राणों का मोह त्याग कर विशाल शत्रु-सेना पर टूट पड़े थे। प्राणनाथ प्रभु उनके हृदयों में वर्षों से जो भावना भरने का यत्न कर रहे थे, उसका परिणाम आज प्रकट हुआ है। भाड़े के टट्टू सिपाही क्या कभी इस वीरता से युद्ध कर सकते हैं।

छत्रसाल—तुम ठीक कहती हो बहन! जनता में जो स्वाधीनता की लहर प्रवाहित हो उठी है, वही छत्रसाल का वास्तविक बल है। अच्छा, चलो, विंध्यवासिनी के चरणों में प्रणाम कर आवें।

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान — दिल्ली का राज-महल। जेबुन्निसा अकेली]

जेबुन्निसा—(गारही है)

साकी अपना मज़हब आला!
देता जा प्याले पर प्याला!
जो उस मज़हब का दीवाना,
छोड़ेगा कब आँख दिखाना,
शिकवा करता रहे ज़माना!
उसने तो इस में विष डाला!

साक़ी अपना मज़हब आला !
देता जा प्याले पर प्याला !
उसने कितने भोले-भाले,
दिल गुमराह किये, मतवाले,
दुनिया के टुकड़े कर डाले,
पिला तअस्सुब का वह प्याला !
पर, अपना यह जाम निराला !
साक़ी, दे प्याले पर प्याला !
मंदिर मस्जिद, या गिरजा घर,
सब में रहता है वह दिलवर,
चल इन्सान दुई से बचकर,
पीले जाम मुहब्बतवाला,
साकी अपना मज़हब आला !
देता जा प्याले पर प्याला !

मैं यह सोच कर हैरान हूँ कि मजहब के नाम पर इन्सान इन्सान की जान क्यों लेता है ! मालूम नहीं यह खुदगरजी की आँधी इन्सानियत को कहाँ लिये जा रही है। अब्बा को भी सारी ज़िदगीभर एक खब्त सवार रहा है—दुनिया को मुसलमान बनाने का ! आखिर यह क्यों ? क्या हिंदू रहकर इन्सान इन्सान नहीं रहता ? मुसलमान बनकर क्या वह ज्यादा खूबसूरत हो जाता है ? अब्बा के तअस्सुब ने न जाने कितने बेकसूर लोगों की जान ले ली है। हक़ का जल्वा दुनियवी रिश्तों से ऊपर है। मेरा

जी चाहता है कि इस ज़ुल्म के खिलाफ़ मैं भी बाग़ी बन कर मराठों, बुंदेलों और राजपूतों की मदद करूँ। राजपूतों की क़ौम भी कितनी अच्छी है, जहाँ औरतें भी तलवार चलाती हैं। काश मैं राजपूतनी होती।

(जहनारा का प्रवेश)

जहानारा—ज़ेबुन्निसा! यहाँ अकेली क्या कर रही हो? बाहर देखो, कैसी चाँदनी छिटक रही है! तुम तो शायर हो। क्या तुम्हारा दिल इस वक़्त बाहर घूमने की ख़्वाहिश नहीं करता?

ज़ेबु—चाँद आसमान में है, और मैं ज़मीन पर। इस चाँदनी से दिल की आग बढ़ती है फूफी, इसीलिए मैं अब बाहर जाने से डरती हूँ। यहाँ बैठी गीत लिख रही हूँ।

जहानारा—क्या गीत लिख रही हो?

ज़ेबुन्निसा—और क्या गीत लिखूँगी! अब्बा के ज़ुल्मों पर आँसू बहा रही हूँ। उन्होंने सारे हिंदुस्तान को उजाड़ दिया। इस सुख-चैन से भरे-पूरे बहिश्त को दोज़ख़ बना दिया। देखो न, उन्होंने अपने महलों को भी कैसा बदसूरत बना दिया है! कहीं एक तसवीर नहीं, कहीं कोई नक़्क़ाशी नहीं। बुज़ुर्गों के ज़माने की बनी हुई इमारतों की भी सूरत वह बिगाड़ रहे हैं। मेरा तो इन बातों को देख कर जी जलता है।

जहानारा—तुम शायर हो न, इसीलिए। लेकिन, औरंगज़ेब की बेटी को ये बातें ज़ेबा नहीं।

साक़ी अपना मज़हब आला !
देता जा प्याले पर प्याला !
उसने कितने भोले-भाले,
दिल गुमराह किये, मतवाले,
दुनिया के टुकड़े कर डाले,
पिला तअस्सुब का वह प्याला !
पर, अपना यह जाम निराला !
साक़ी, दे प्याले पर प्याला !
मंदिर मस्जिद, या गिरजा घर,
सब में रहता है वह दिलवर,
चल इन्सान दुई से बचकर,
पीले जाम मुहब्बतवाला,
साकी अपना मज़हब आला !
देता जा प्याले पर प्याला !

मैं यह सोच कर हैरान हूँ कि मजहब के नाम पर इन्सान इन्सान की जान क्यों लेता है ! मालूम नहीं यह खुदगरज़ी की आँधी इन्सानियत को कहाँ लिये जा रही है। अब्बा को भी सारी ज़िंदगीभर एक ख़ब्त सवार रहा है—दुनिया को मुसलमान बनाने का ! आख़िर यह क्यों ? क्या हिंदू रहकर इन्सान इन्सान नहीं रहता ? मुसलमान बनकर क्या वह ज्यादा खूबसूरत हो जाता है ? अब्बा के तअस्सुब ने न जाने कितने बेकसूर लोगों की जान ले ली है। हक़ का जल्वा दुनियवी रिश्तों से ऊपर है। मेरा

जी चाहता है कि इस ज़ुल्म के खिलाफ़ मैं भी बाग़ी बन कर मराठों, बुंदेलों और राजपूतों की मदद करूँ। राजपूतों की क़ौम भी कितनी अच्छी है, जहाँ औरतें भी तलवार चलाती हैं। काश मैं राजपूतनी होती।

(जहनारा का प्रवेश)

जहानारा—ज़ेबुन्निसा! यहाँ अकेली क्या कर रही हो? बाहर देखो, कैसी चाँदनी छिटक रही है! तुम तो शायर हो। क्या तुम्हारा दिल इस वक़्त बाहर घूमने की ख़्वाहिश नहीं करता?

ज़ेबु—चाँद आसमान में है, और मैं ज़मीन पर। इस चाँदनी से दिल की आग बढ़ती है फूफी, इसीलिए मैं अब बाहर जाने से डरती हूँ। यहाँ बैठी गीत लिख रही हूँ।

जहानारा—क्या गीत लिख रही हो?

ज़ेबुन्निसा—और क्या गीत लिखूँगी! अब्बा के ज़ुल्मों पर आँसू बहा रही हूँ। उन्होंने सारे हिंदुस्तान को उजाड़ दिया। इस सुख-चैन से भरे-पूरे बहिश्त को दोज़ख़ बना दिया। देखो न, उन्होंने अपने महलों को भी कैसा बदसूरत बना दिया है! कहीं एक तसवीर नहीं, कहीं कोई नक़्क़ाशी नहीं। बुज़ुर्गों के ज़माने की बनी हुई इमारतों की भी सूरत वह बिगाड़ रहे हैं। मेरा तो इन बातों को देख कर जी जलता है।

जहानारा—तुम शायर हो न, इसीलिए। लेकिन, औरंगज़ेब की बेटी को ये बातें ज़ेबा नहीं।

ज़ेबुन्निसा—नहीं फूफी, मैं बग़ावत करूँगी। इन्सानियत की इतनी हतक मैं नहीं बरदाश्त कर सकती।

जहानारा—भोली जेबुन्निसा, तुम बग़ावत करोगी? औरंगज़ेब के ख़िलाफ़? तुम्हारे भाई अकबर ने भी बग़ावत की है न! लेकिन जानती हो, उसका नतीजा क्या निकला? औरंगजेब ने एक ख़त लिख कर अकबर के पास इस ढंग से भेजा कि वह राजपूतों के हाथ पड़ जाय। उसमें लिखा था—'तुमने राजपूतों के साथ खूब चाल चली। वे तुम पर पूरा यक़ीन ले आये हैं। अब मौक़ा मिलने पर तुम्हारी और हमारी फ़ौजें राजपूतों को जहन्नम का रास्ता दिखा सकेंगी। शाबाश! मैं तुम्हारी चालाकी पर बहुत खुश हूँ।' औरंगज़ेब का तीर अचूक बैठा। राजपूतों ने अकबर का साथ छोड़ दिया। अब वह घर का रहा, न घाट का। बोलो जेबुन्निसा, तुम उस आफ़त के परकाले से बग़ावत करोगी। तुम्हारा मददगार कौन होगा?

ज़ेबुन्निसा—मैं यह जानती हूँ कि अब्बा से पार पाना मामूली काम नहीं, फिर भी इन्सानियत पर उनके जोरो-ज़ुल्म नाक़ाबिल बरदाश्त हो रहे हैं और दिल कभी-कभी हक़ की राह में फ़ना हो जाने को बेचैन हो उठता है।

जहा—हम औरतों के हाथ में है ही क्या! फिर भी हमारा दिल नहीं मानता। हमारा हमदर्द दिल ही हमारा सबसे बड़ा दुश्मन है। हम कुछ कर नहीं सकतीं, लेकिन दुनिया की पामाली नहीं देख सकतीं! एक दिन जब औरंगज़ेब ने अब्बा को

अपने जैसा ही देखते हो औरंगज़ेब ! अगर हम लोग तुम्हारी तरह साज़िश करना जानतीं तो यह समझ लो कि आज तख़्ते ताऊस पर औरंगज़ेब न बैठा होता ।

औरंग—तख़्ते ताऊस पर बैठने का औरंगज़ेब को कभी शौक़ नहीं हुआ। वह तो इस्लाम का अदना ख़ादिम है। उसकी हर साँस में इस्लाम की ख़िदमत की आरज़ू है और उसकी जगह है लोगों के क़दमों की धूल में ! तुम जिसे कहो उसे आज भी यह तख़्त देने को मैं बख़ुशी तैयार हूँ।

जहा—नहीं औरंगज़ेब ! अज़ाबों से रँगे हुए इस तख़्त पर अब औरंगज़ेब के सिवा कोई नहीं बैठ सकता। तुमने मुग़ल सल्तनत की नींव की ईंटें कमज़ोर कर दी हैं। यह इमारत अब चंद दिन की मेहमान है। हिन्दू-मुसलमानों का मेल इस इमारत को कायम रखने वाला चूना था, तुमने उसी को बरबाद कर दिया। बिना चूने के अब यह इमारत कब तक खड़ी रहेगी ? तुम्हारे पहले दुनिया यह नहीं जानती थी कि इस मुल्क में हिंदुओं का राज है या मुसलमानों का। दुनिया की सारी ताक़तें हिन्दोस्तान के क़दमों में सर झुकाती थीं और इसका फ़क्र हरएक हिंदोस्तानी को था, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान। आज हिंदोस्तान घरेलू लड़ाई में मुब्तला है। दुनिया में आज उसकी क्या इज्ज़त है ? तुमने हिन्दोस्तान को तबाह कर दिया, मुग़ल सल्तनत की क़ब्र खोद दी, इस्लाम की सूरत बिगाड़ दी।

औरंग—शायद, तुम्हारा ही कहना ठीक हो ! आज सब

जगह मुझे नाकामयाब होना पड़ रहा है। दक्खिन के मराठे काबू में नहीं आये, राजपूतों ने भी सर उठाया है और बुंदेलखण्ड में छत्रसाल ने रणदूलहखाँ को करारी शिकस्त दी है। इस छत्रसाल ने एक नई ही मुसीबत खड़ी कर दी है। मैं उसके मारे परेशान हूँ। रणदूलहखाँ की शिकस्त के बाद मैंने उसे दबाने के लिये तुर्क फौज भेजी थी। उसने छत्रसाल को धमिया नाम के मुक़ाम पर अचानक जंगल में जा घेरा। लेकिन छत्रसाल के एक आदमी ने हमारी फौज के तोपख़ाने में आग लगा दी और उधर से बुंदेलों की फौज ने हमला बोल दिया। हमारी सारी फौज बरबाद हो गई।

जहा—तोपों के ज़ोर पर कितने दिनों तक मुग़ल सल्तनत को ज़िंदा रख सकोगे भैया!

औरंग—मैं भरसक कोशिश कर रहा हूँ बहन! मैं इस्लाम और मुग़ल सल्तनत की हिफ़ाज़त के लिए अपनी जान देने के लिए तैयार हूँ। इस दफ़ा मैंने तहव्वरख़ाँ को छत्रसाल के ख़िलाफ़ भेजा है। बाग़ियों का सर कुचलना मैं ख़ूब जानता हूँ, जहानारा!

जहा—रहने दो भैया! रात-दिन जंग, इस्लाम और सल्तनत! बस इन्हीं की चर्चा! इनके सिवा भी दुनिया में बहुत कुछ है! तुम जब इधर आते हो, न तो कोई अपने दुख-सुख की बात करते हो और न हमारी पूछते हो। यह भी कोई ज़िंदगी है?

औरंग—मैंने सिर्फ़ इस्लाम को जाना है और सल्तनत को जाना है। ज़िन्दगी क्या है यह जानने को तो मुझे आज तक

फ़ुरसत ही नहीं मिली ! मशीन के पुर्जे की तरह सुवह से शाम तक मैंने सिर्फ़ काम करना सीखा है। मैं चल रहा हूँ, चलता रहूँगा, कभी एक घड़ी भी आराम न लूँगा। अच्छा चलो वहन! भीतर चलें !

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

छठा दृश्य

[स्थान—खँडवा—वाजना ग्राम में प्रवेश करने की मुख्य सड़क]

(तहव्वरखाँ और एक सैनिक का प्रवेश)

(नेपथ्य में शहनाई की आवाज़)

सैनिक—इसी गाँव में आज छत्रसाल की शादी है।

तहव्वरखाँ—और वह शादी मौत के साथ होगी। तहव्वर खाँ के चंगुल में फँस कर शिकार नहीं निकल सकता। विंध्याचल की अजनवी पहाड़ियों पर छत्रसाल से जूझना वेवकूफ़ी होती। इस गाँव में शादी के लिए आया हुआ वह वेख़वर आसानी से मौत के घाट उतारा जा सकेगा। इससे अच्छा मौका हाथ आ नहीं सकता था। शेरखाँ, तुम जाकर फौज से कहो कि फ़ौरन इस गाँव को घेर लिया जाय। तोपों से गाँव का गाँव उड़ा दिया जाय।

(सिपाही का प्रस्थान)

तहव्वर खाँ—हः ! हः ! आज छत्रसाल की शादी है। कैसी मजेदार बात है। इधर उसकी मौत की तैयारी हो रही है, और उधर उसकी शादी की शहनाई बज रही है।

[एक ओर से तहव्वर खाँ का प्रस्थान, दूसरी ओर से बलदिवान और विजया का प्रवेश। तोपें चलने की आवाज़]

बलदिवान—अनर्थ हो गया विजया ! शत्रु ने हमें घेर लिया। हमारे पास सेना भी बहुत थोड़ी है।

विजया—तो फिर अभी छत्रसाल विवाह को रोक कर निकल भागने का प्रयत्न करना चाहिए।

बलदिवान—नहीं, यह कभी न होगा। यह तो बुंदेलों की आन के विरुद्ध है। राजपूतों के विवाह सदा ही तोपों के गर्जन से अभिमंत्रित होते आए हैं। बलदिवान के बल की आज परीक्षा है। जब तक मेरी देह में प्राण हैं, शत्रु विवाह-मंडप तक नहीं पहुँच सकता। मैं अभी जाता हूँ विजया। अपनी थोड़ी सी सेना लेकर शत्रु को रोकने का यत्न करता हूँ। तुम भी जाओ और छत्रसाल से कहना कि यथाविधि सात भाँवरें डाले बिना विवाह-मंडप से बाहर पैर न रखें। वर-वधू को मेरी ओर से आशीर्वाद देना, पता नहीं मैं उनके स्वागत का अवसर पा सकूँ या नहीं।

(बलदिवान का प्रस्थान)

विजया—आज छत्रसाल का विवाह है। तोपों की बौछार में विवाह ! आखिर विवाह इतना महत्त्वपूर्ण कार्य क्यों समझा जाता है। उसके लिए...नहीं, नहीं, मुझे इन बातों पर विचार न करना चाहिए। (कुछ रुक कर) किंतु...(शहनाई की आवाज़ सुनकर) तोपों के गर्जन में कभी-कभी शहनाई की आवाज़ सुन पड़ती है, विस्तृत रेगिस्तान में जैसे हरियाली का एक टुकड़ा हो। मेरा जीवन ! वह भी तो एक विस्तृत रेगिस्तान बन गया है। प्रेम के पंछी को बैठने के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है, कोई सहारा नहीं है। (प्रस्थान)

(तहव्वर खाँ का प्रवेश)

तहव्वर खाँ—इन बुंदेलों का हौसला भी काबिले तारीफ़ है। बलदिवान ने आकर हमारा रास्ता रोक दिया है। मुट्ठी-भर बुंदेलों को लेकर वह हमारी बेशुमार फ़ौज के सामने आ डटा है। उसका तलवार चलाना और लड़ने का ढंग देख कर मैं तो दंग रह गया।

(एक ओर से तहव्वर खाँ का प्रस्थान दूसरी ओर से बलदिवान का प्रवेश)

बलदिवान—आज देश की स्वाधीनता का नहीं, बुंदेलों की आन का प्रश्न है। यह स्वाधीनता का संग्राम तो युग-युग तक चलता रहेगा, किंतु कुल की इज्जत बचाने के अवसर बार-बार नहीं आते। बुंदेलों के विवाह की प्रतिष्ठा और पवित्रता की रक्षा प्राण देकर करनी होगी। जब तक एक भी बुंदेले वीर के शरीर

में साँस बाकी है, तहव्वरख़ाँ वर-वधू के निकट नहीं पहुँच सकता।

(चार-पाँच मुग़ल सिपाहियों का प्रवेश और बलदिवान पर आक्रमण करना। बल-दिवान अकेला उनसे युद्ध करता है। एक सिपाही पीछे से उस पर प्रहार करना चाहता है। सहसा तलवार लिए हुए विजया का प्रवेश और बीच में पड़कर उसके आघात से आहत होकर गिर जाना)

बलदिवान—(तलवार चलाते हुए) यह क्या हुआ, विजया ! आह ! किंतु पहले इन्हें मौत के घाट उतार लूँ।

(तीव्र वेग से तलवार चलाते हुए सिपाहियों को खदेड़ते हुए बाहर लेजाते हैं।)

विजया—इन प्राणों का इससे अच्छा उपयोग क्या हो सकता था ? बलदिवान, तुम अपने प्रश्न का उत्तर चाहते थे ? वाणी मूक है, किंतु धर्म आज उसका मूर्तिमान उत्तर बन कर तुम्हारे सामने है ! क्या तुम अब भी मेरे हृदय के भाव न समझ सकोगे ?

(बलदिवान का प्रवेश)

बलदिवान—तीन को मौत के घाट उतार दिया, दो भाग गए। विजया, क्या ज़्यादा चोट आई है ? (विजया का सिर अपने घुटनों पर रखता है) तुमने मेरे पीछे अपने प्राणों की तृण के बराबर भी परवा नहीं की विजया ! मैंने तुम्हारे गंभीर और

विजया—आज छत्रसाल का विवाह है। तोपों की बौछार में विवाह ! आखिर विवाह इतना महत्त्वपूर्ण कार्य क्यों समझा जाता है। उसके लिए' 'नहीं, नहीं, मुझे इन बातों पर विचार न करना चाहिए। (कुछ रुक कर) किंतु' '(शहनाई की आवाज़ सुनकर) तोपों के गर्जन में कभी-कभी शहनाई की आवाज़ सुन पड़ती है, विस्तृत रेगिस्तान में जैसे हरियाली का एक टुकड़ा हो। मेरा जीवन ! वह भी तो एक विस्तृत रेगिस्तान बन गया है। प्रेम के पंछी को बैठने के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है, कोई सहारा नहीं है। (प्रस्थान)

(तहव्वर खाँ का प्रवेश)

तहव्वर खाँ—इन बुंदेलों का हौसला भी काबिले तारीफ़ है। बलदिवान ने आकर हमारा रास्ता रोक दिया है। मुट्ठी-भर बुंदेलों को लेकर वह हमारी बेशुमार फ़ौज के सामने आ डटा है। उसका तलवार चलाना और लड़ने का ढंग देख कर मैं तो दंग रह गया।

(एक ओर से तहव्वर खाँ का प्रस्थान दूसरी ओर से बलदिवान का प्रवेश)

बलदिवान—आज देश की स्वाधीनता का नहीं, बुंदेलों की आन का प्रश्न है। यह स्वाधीनता का संग्राम तो युग-युग तक चलता रहेगा, किंतु कुल की इज्ज़त बचाने के अवसर बार-बार नहीं आते। बुंदेलों के विवाह की प्रतिष्ठा और पवित्रता की रक्षा प्राण देकर करनी होगी। जब तक एक भी बुंदेले वीर के शरीर

में साँस बाकी है, तहव्वरखाँ वर-वधू के निकट नहीं पहुँच सकता।

(चार-पाँच मुग़ल सिपाहियों का प्रवेश और बलदिवान पर आक्रमण करना। बल-दिवान अकेला उनसे युद्ध करता है। एक सिपाही पीछे से उस पर प्रहार करना चाहता है। सहसा तलवार लिए हुए विजया का प्रवेश और बीच में पड़कर उसके आघात से आहत होकर गिर जाना)

बलदिवान—(तलवार चलाते हुए) यह क्या हुआ, विजया! आह! किंतु पहले इन्हें मौत के घाट उतार लूँ।

(तीव्र वेग से तलवार चलाते हुए सिपाहियों को खदेड़ते हुए बाहर लेजाते हैं।)

विजया—इन प्राणों का इससे अच्छा उपयोग क्या हो सकता था? बलदिवान, तुम अपने प्रश्न का उत्तर चाहते थे? वाणी मूक है, किंतु कर्म आज उसका मूर्तिमान उत्तर बन कर तुम्हारे सामने है! क्या तुम अब भी मेरे हृदय के भाव न समझ सकोगे?

(बलदिवान का प्रवेश)

बलदिवान—तीन को मौत के घाट उतार दिया, दो भाग गए। विजया, क्या ज्यादा चोट आई है? (विजया का सिर अपने घुटनों पर रखता है) तुमने मेरे पीछे अपने प्राणों की तृण के बराबर भी परवा नहीं की विजया! मैंने तुम्हारे गंभीर और

मूक प्रेम को आज पहचाना। आह तुम कितनी महान् हो, कितनी प्रिय हो!

विजया—जान गये प्रियतम! अच्छा, अब मैं जाती हूँ। छत्रसाल का विवाह है! आज विजया का भी विवाह है! वह देखो शहनाई बज रही है। विदा दो बलदिवान!

बलदिवान—यह न कहो विजया! तुम अच्छी हो जाओगी! मैं तुम्हें मरने नहीं दूँगा।

विजया—मैंने तुम्हारे प्राणों की रक्षा के लिए अपने प्राण इसलिए दिये हैं कि तुम जन्मभूमि की रक्षा करो। यदि तुम मुझे प्यार करते हो, तो मेरा अंतिम आदेश स्वीकार करो। देश की दासता के बंधन काटने के कार्य में तुम सदा छत्रसाल के दाहिने हाथ बनकर रहना। उससे मेरी आत्मा को संतोष मिलेगा। मेरी भविष्यवाणी है कि तुम्हारा कार्य एक दिन अवश्य सफल होगा। (मृत्यु)

बलदिवान—मेरे जीवन की आग! तृष्णा! उन्माद! तुम चलीं! जिस प्रवाह को कर्तव्य के बाँध से रोक रखा था, वह आज बेकाबू हो रहा है! (आँखों में आँसू, तोपों का गर्जन) हैं! शत्रु आगे बढ़ रहे हैं! बलदिवान के जीवित रहते छत्रसाल पर आँच नहीं आ सकती। (विजया के शव को उठाकर चलते हैं) इसे एक जगह पर रखकर अभी शत्रु को मजा चखाता हूँ।

(एक ओर से छत्रसाल का नव वधू के साथ प्रवेश)

छत्रसाल—यही तो राजपूतों का जीवन है। अभी तुम्हारे सिर

पर मोर बँधा था, अब किसे पता कि कल ही तुम्हारे हाथ की चूड़ियाँ न उतर जायँगी !

नववधू—ऐसी बात न कहिए ! शत्रुओं के रक्त से मेरे सुहाग की लाली गहरी ही होगी।

छत्रसाल—यहाँ से बाहर जाना भी तो सरल नहीं है। मैं अकेला होता तो······

नववधू—राजपूतनी पति के पैरों की बेड़ी नहीं होती स्वामी ! एक तलवार और एक घोड़ा, ये दो चीजें मुझे भी दे दीजिए, फिर मैं देखती हूँ कि शत्रु हमें कैसे रोक पाता है !

छत्रसाल—शाबाश ! तुम जैसी वीर-पत्नी पाकर मैं धन्य हुआ।

(बलदिवान का प्रवेश)

बलदिवान—जाओ भैया, दो घोड़े तैयार हैं।

छत्रसाल—तुम यहाँ से न जाओगे ?

बलदिवान—मेरा अमूल्य रत्न यहाँ रह गया है। उसे इस शत्रु-सेना के बीच से ले जाना संभव नहीं है।

छत्र—क्या ? कौन ?

बलदिवान—विजया ! विजया ने मेरी प्राण-रक्षा के प्रयत्न में शत्रु के प्रहार पर अपने प्राण दे दिये भैया !

छत्रसाल—ओह ! तेजस्विनी, तपस्विनी, विजया ! उसने देश के लिए सारा जीवन ही उत्सर्ग कर दिया।

बलदिवान—तुम जल्दी करो भैया, समय नहीं है।

छत्रसाल—अच्छा मैं घेरे के बाहर निकलते ही शत्रु पर आक्रमण करूँगा। तुम तब तक युद्ध जारी रखना।

[एक से ओर छत्रसाल और नव-वधू का और दूसरी ओर बलदिवान का प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

सातवाँ दृश्य

[स्थान—धसान नदी का तट। प्राणनाथ प्रभु अकेले]

प्राण—चंपतराय और लालकुँवरि के नाम बुंदेलखंड के इतिहास में अमर हैं। वे इस भूमि में बीज डालकर चले गये और आज सारा बुंदेलखण्ड उसके मधुर फल चख रहा है। इसका विश्वास तो मुझे भी न था कि बुंदेलों की सेना कभी मुग़लों को पराजित करेगी, किन्तु धन्य है वीर छत्रसाल, जिसने असंभव को संभव कर दिखाया। चंपतराय के स्वर्गवास के समय वह रास्ते का भिखारी था, आज सारा बुंदेलखण्ड उसके आगे श्रद्धा से सिर झुकाता है। एक दिन वह भी था जब तीन दिन के भूखे छत्रसाल को सगी बहन ने भोजन कराने से इनकार कर दिया था और आज? आज वह दिन है कि लोग उसके इंगित पर अपने प्राण चढ़ाने को तैयार हैं। सच है, चढ़ते सूर्य को सभी नमस्कार करते हैं।

(अंगदराय का प्रवेश)

प्राण—कौन ? अंगदराय !

अंगदराय—हाँ, गुरुदेव ! (प्राणनाथ प्रभु के चरण छूते हैं) नमस्कार !

प्राणनाथ—यशस्वी हो, भैया ! छत्रसाल का क्या हाल है ?

अंगद—वे आते ही होंगे। अभी हम लोग कालिंजर को जीत कर आये हैं।

प्राणनाथ—कालिंजर का गढ़ तो बहुत मजबूत है ! उसे हस्तगत करना कैसे सम्भव हुआ ?

अंगद—वह गढ़ बलदिवान के असाधारण पराक्रम से जीता गया है। लगातार अठारह दिन तक वह गढ़ पर घेरा डाले पड़ा रहा और उस पर गढ़ की तोपें अग्नि-वर्षा करती रहीं। गुरुदेव, उस जैसा ज़िद्दी और साहसी आदमी मैंने नहीं देखा। उसने घोषित कर दिया—"या तो यह गढ़ हस्तगत करूँगा, या यहीं प्राण दे दूँगा;" जैसे उसे अपने प्राण भारी मालूम पड़ रहे थे। अंत में किले की रसद समाप्त हो गई और शत्रु को गढ़ से बाहर निकलना पड़ा। बस जिस फाटक से शत्रु-सेना बाहर निकली, उसी से हम अंदर घुस गये।

प्राणनाथ—बलदिवान वास्तव में इन्द्र का अवतार है, और जब से विजया की मृत्यु हुई है तब से तो वह और भी भयंकर हो गया है।

(छत्रसाल और बलदिवान का प्रवेश)

प्राणनाथ—आओ, जन्मभूमि के आशा-केन्द्र !

(छत्रसाल और बलदिवान प्राणनाथ प्रभु के चरण छूते हैं)

प्राणनाथ—अमर बनो, यशस्वी बनो और उत्तरोत्तर तेजस्वी बनो ! कहो अब किधर धावा बोला जा रहा है ?

बलदिवान—ओड़छे पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे हैं।

प्राणनाथ—फिर यह गृह-युद्ध ! ज्ञात होता है बुंदेलखण्ड के दुर्भाग्य के दिन अभी समाप्त नहीं हुए।

बलदिवान—विवशता है गुरुदेव ! ओड़छा के महाराज भगवंतसिंह अभी बालक हैं। मंत्रियों के हाथ में शासन-भार है। उन्होंने फिर मुग़लों से सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। उन्हें इस देश-द्रोह का दंड देना हमारा आवश्यक कर्तव्य है।

प्राणनाथ—किंतु, गृहयुद्ध का आयोजन हमारे व्यापक स्वातंत्र्य यज्ञ में बाधक होगा भैया !

छत्रसाल—लक्ष्य चाहे जितना महान् हो, मार्ग के क्षुद्र काँटे तो साफ़ करने ही पड़ते हैं।

(अमरकुँवरि का सहसा प्रवेश)

बलदिवान—कौन ? अमरकुँवरि !

छत्रसाल—ओड़छे की राजमाता ! यहाँ !

अमरकुँवरि—आज सारी लाज-शर्म छोड़कर ओड़छे की राज-माता अपने श्वशुर तुल्य महानुभावों के सम्मुख कुछ निवेदन करने आई है। मैंने सुना है कि आप लोग ओड़छे पर आक्रमण करने ... हैं। क्या यह सत्य है ?

छत्रसाल—हाँ, सत्य है।

अमर—क्या आप अपने हाथों पूर्वजों की स्मृति को विध्वंस करने जा रहे हैं ?

छत्रसाल—मुझे ऐसा करते हुए दुःख होता है, किंतु मैं क्या करूँ। बुंदेलखंड की स्वाधीनता के शत्रुओं से बुंदेलों के स्वाभिमान की रक्षा के लिए मुझे अपने पूर्वजों के राज्य का अंत करना ही पड़ेगा। तुम्हारे मंत्रियों ने फिर मुग़ल साम्राज्य से संबंध स्थापित किया है, बुंदेलखण्ड में मैं मुग़लों का किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं सहन करना चाहता। मैं इसके पहले ओड़छा को धूल में मिला दूँगा।

अमर—अमरकुँवरि के हाथों में शस्त्र पकड़ने की शक्ति है। यदि आप ओड़छा का अपमान करना चाहें तो याद रखिये जिस प्रकार हीरादेवी ने चंपतराय जी के स्वप्नों पर पानी फेर दिया था, उसी भाँति मैं भी आपका संपूर्ण आयोजन व्यर्थ कर सकती हूँ।

प्राणनाथ—इससे क्या पाओगी बेटी! मातृभूमि के बंधन दृढ़ करने में तुम्हें क्या सुख मिलेगा? तुम जैसी वीर महिलाएँ यदि आज छत्रसाल का साथ दें, तो देखते-देखते युग-परिवर्तन हो जाय। भूल जाओ बेटी, उस वंश-परम्परागत वैर को भूल जाओ। ओड़छा और महेवा के कुल मूल में एक ही महाप्राण पुरुष रुद्रप्रताप के वंशज हैं।

अमर—इसीलिए तो मैं यहाँ आई हूँ! हृदय में मैं भी यह अनुभव करती हूँ कि हमारे मंत्रियों ने अपराध किया है। मैं उन्हें

दंड देने का विचार भी कर रही हूँ, किंतु, यदि महेवावालों ने ओड़छे का अपमान किया तो मैं फिर कहे देती हूँ कि मैं हीरादेवी से भी ज्यादा घातक सिद्ध हूँगी।

छत्रसाल—देखो अमर, अब हीरादेवी इस लोक में नहीं है। तुम बार बार उनका नाम लेकर मुझे उत्तेजित न करो! वह यदि जीवित होती तो मेरी माँ को उसने जो कष्ट दिये शायद उनका मैं बदला लेता। किंतु, मैं तुम्हें यह स्पष्ट बतला देना चाहता हूँ कि ओड़छे का अपमान करने की इच्छा मेरे हृदय में अणु मात्र भी नहीं है। मर्यादा की रक्षा के लिए समय पड़ने पर छत्रसाल अपने प्राण भी दे सकता है। किंतु, मुग़लों से यह सन्धि ....

अमर—उसकी चर्चा न कीजिए महाराज! मैं स्वयं उस त्रुटि को हृदय से अनुभव करती हूँ और अपने मंत्रियों के कार्य पर लज्जित हूँ। आपने ओड़छे के प्रति जो हार्दिक सद्भाव प्रकट किये हैं, उनसे मेरे हृदय का कलमष बिलकुल धुल गया है! मैं ओड़छा राज्य की ओर से घोषित कर रही हूँ कि वह स्वतन्त्रता के सूर्य के स्वागत के लिए आँखे बिछाकर कृतकृत्य होगा। ओड़छा की चिर-संचित सम्पत्ति, उसकी सेना, सब कुछ आपके चरणों में समर्पित है। जिस तरह चाहें उसका उपयोग करें। जुझारसिंह, पहाड़सिंह, हीरादेवी और पतिदेव के पापों का प्रायश्चित्त आज अमरकुँवरि करेगी।

प्राणनाथ—धन्य हो बेटी! महेवा और ओड़छा की फूट ने ही आज तक बुंदेलखण्ड में स्वाधीनता का सूर्योदय नहीं होने दिया

था, आज ये बादल सदा के लिए दूर हो गये। जो कार्य छत्रसाल दस साल में भी न कर सकते, तुम्हारे हृदय की भावुकता ने वह एक दिन में कर दिखाया! इस महान् शक्ति के कारण ही संसार नारी के चरणों में मस्तक झुकाता है।

अमर—पूज्यवर! जब आप ओड़छा जाने का निश्चय करके निकले हैं, तो बीच रास्ते से न लौट सकेंगे। मैं आप सब स्वतंत्रता के पुजारियों को ओड़छा पधारने का निमन्त्रण देती हूँ, उस पापपूर्ण निमन्त्रण का प्रायश्चित्त करने के लिए जो हीरादेवी ने चम्पतराय जी को दिया था।

छत्रसाल—भगवान तुम्हारे सद्भावों को अक्षय बनाएँ! हम अवश्य चलकर तुम्हारा आतिथ्य ग्रहण करेंगे।

(सब का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

आठवाँ दृश्य

[स्थान—अहमदनगर में मुग़ल राज-महल। औरंगज़ेब रोग-शय्या पर, ज़ेबुन्निसा पंखा कर रही है]

ज़ेबु०—(पंखा करना बंद करके उठती है और एक बोतल से एक गिलास में दवा डालती है) अब्बा, लो दवा पी लो।

औरंग—अब दवा का क्या होगा, बेटी! यह मेरा आख़िरी वक्त है। ज्यों-ज्यों आँखें बंद होने का वक्त करीब आता जाता है,

आँखें खुलती जाती हैं। ऐसा जान पड़ता है, जैसे सारी ज़िंदगी अँधेरे रास्ते का सफ़र करते हुए विताई है। तुमने और वहन जहा-नारा ने कितनी मर्त्तवा रोशनी दिखाने की कोशिश की, लेकिन सव वेसूद, सव फ़िज़ूल। जो सल्तनत वावर ने अपना ख़ून वहाकर हासिल की और जिसे अकवर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने दया-नतदारी, वहादुरी और मुहब्वत से वढ़ाया और मज़वूत किया उसे मैंने तअस्सुव, घमंड और पागलपन से टुकड़े-टुकड़े कर डाला। मेरे वाद...क्या होगा...या अल्लाह!

ज़ेबु०—फ़िक्र न करो अव्वा, तुम अच्छे हो जाओगे। ज़रूर अच्छे हो जाओगे। मुझे वड़ी खुशी है अव्वा, कि तुम्हारे खयालात में तवदीली हो रही है। अगर तुम चाहो तो अव भी अपनी ग़लती ठीक कर सकते हो।

औरंग—मैंने इन आखिरी दिनों में ग़लती सुधारने की कोशिश तो की है वेटी! इसीलिए मैंने छत्रसाल को बुलाकर उसे मनसव देना चाहा था; लेकिन, अफ़सोस उसने भी अपने वालिद चंपत-राय की तरह मनसव लेना नामंजूर कर दिया। पहले वाला औरंग-ज़ेव होता तो इस गुस्ताखी के लिए छत्रसाल का क़त्ल करा देता, लेकिन मैंने इस दफ़ा ऐसा न करके बुंदेलखण्ड की आज़ादी को क़वूल कर लिया और छत्रसाल से दोस्ती की इस्तदुआ की।

ज़ेबु—यही सच्ची इन्सानियत है अव्वा!

औरंगज़ेव—लेकिन वेटी, इसके वावजूद भी सल्तनत के आसार कुछ अच्छे नज़र नहीं आते। मराठे, राजपूत, जाट और सिक्ख

जुरअत आपकी इस अदना दुख़्तर में क्यों कर हो सकती है, मगर आप को इससे कुछ तसल्ली मिलती हो, तो मैं उन तमाम इन्सानों की तरफ़ से जिन्हें मुग़ल बादशाहत के ज़ुल्म का शिकार होना पड़ा है, आपको मुआफ़ करती हूँ। खुदा से आपके लिए तह-दिल से दुआ करती हूँ।

औरंग—मेरी बेटी! अब मैं सुख से मरूँगा और मर कर कुछ राहत पा सकूँगा। जेबुन्निसा! मेरी बेटी! मैं तुम्हें शायरी करने, तसवीरें बनाने, और गाने से रोकता रहा हूँ। आज जब मेरी ज़िंदगी मौत के किनारे आ पहुँची है, मैं तुम से इल्तिजा करता हूँ कि मुझे एक गीत सुना कर घड़ी भर के लिए फिर उस आलम में पहुँच जाने दो, जिससे मैं मुद्दत से महरूम रहता आया हूँ! सुनाओ बेटी, सुनाओ! मेरी आख़िरी तमन्ना पूरी कर दो, मेरा ज़िंदगी भर का सूनापन आज अपने एक गीत से भर दो।

ज़ेबु०—अच्छा अब्बाजान, एक नया गीत सुनाती हूँ।

(गाती है)

भूल बैठे हम मुहब्बत, हँस रहे हम पर सितारे।

अश्क हो जिसमें नहीं वह,

आँख पत्थर से बुरी है,

दर्द से वाकिफ़ न जो, वह,

दिल नहीं पैनी छुरी है।

फ़ख़्र करते हाथ होकर ख़ून में तर क्यों हमारे?

भूल बैठे हम मुहब्बत, हँस रहे हम पर सितारे।

किस लिए इन्सान का
इन्सान हो दुश्मन रहा है ?
हाय ! अपने ही जिगर पर
तेग अपना तन रहा है !
यह चली है नाव दुनिया की न जाने किस किनारे !
भूल बैठे हम मुहब्बत हँस रहे हम पर सितारे ।

औरंग—सचमुच बेटी ! ज़िंदगी भर नमाज़ पढ़ने से दिल को इतनी राहत हासिल न हुई थी, जितनी उसे तुम्हारे इस एक प्यारे गीत ने बख्श दी । अच्छा अब मुझे सहारा देकर ले चलो । आख़िरी वक्त की नमाज़ और पढ़ लूँ ।

ज़ेबुन्निसा—यह न कहो अब्बा ! खुदापाक तुम्हें सेहत और लंबी उम्र बख्शे ।

(ज़ेबुन्निसा सहारा देकर उठाकर ले जाती है)

[पट-परिवर्तन]

नवाँ दृश्य

[स्थान—विंध्य-वासिनी का मंदिर । छत्रसाल, बलदिवान, अंगदराय, प्राणनाथ प्रभु, तथा कुछ बुंदेले सरदार पूजा का आयोजन करके खड़े हुए हैं]

छत्रसाल—भाइयो, हमें हर्ष है कि जो दुर्गाष्टमी का त्योहार बुंदेलों के जीवन में सब से अधिक महत्त्व रखता है, उसे मनाने के लिए हम आज सफलता के अक्षत लेकर एकत्र हुए हैं ।

प्राणनाथ—कितना प्यारा है यह दिन! भाइयो, आज के ही दिन स्वर्गीया लालकुँवरि एक वर्ष के वालक छत्रसाल को इस मंदिर में लेकर आई थीं। आज के ही दिन मैंने विंध्यवासिनी की ओर से वालक छत्रसाल को आशीर्वाद दिया था कि वह बुंदेलखंड को स्वतन्त्र करने में सफल होगा। बहन लालकुँवरि के वे शब्द भुलाए नहीं भूलते! उन्होंने गद्-गद् कंठ से कहा था, "हम रहें या न रहें, लेकिन एक दिन बुंदेलखंड स्वतन्त्र अवश्य होगा। मैं तो इस विश्वास को प्राणों के नीड़ में पाले हुए सहर्ष दुनिया से विदा ले सकती हूँ।" बहन लालकुंवरि की उस दिन की तेजस्वी मुद्रा आज भी मेरी आँखों में घूम रही है।

छत्रसाल—भवानी की कृपा और गुरुदेव के आशीर्वाद से मैं माँ का आदेश पालन कर सका हूँ; बुंदेलखंड की स्वाधीनता के शत्रु मुगल-साम्राज्य से उसके अपमान का पूरा-पूरा प्रतिशोध लिया जा चुका है। अत्याचारी औरंगजेब अहमद नगर में अनुताप की ज्वाला में जलकर मर ही चुका है, दिल्ली की सल्तनत भी टुकड़े-टुकड़े हो कर अपनी मौत मर रही है।

प्राणनाथ—संतोष का विषय है कि आज संपूर्ण बुंदेलखण्ड स्वतंत्र आकाश के नीचे साँस ले रहा है।

बलदिवान—आज का दिन लाने के लिए हमारे नेता छत्रसाल को जो परिश्रम करना पड़ा है, वह शब्दों की सीमा से परे है। दिन रात लड़ते-लड़ते हमें ४० वर्ष हो गये। हजारों माँ के लालों ने मातृभूमि के चरणों में प्राण न्योछावर कर दिये! स्वतंत्रता

देवी की अगवानी के आयोजन में कितनी माताएँ पुत्रहीन हो गईं, कितनी बहनों के भाई खो गये कितनी कुल वधुएँ अपना सुहाग लुटा चुकीं और कितने बच्चे अनाथ हो गये, इसकी कोई गणना नहीं। बुंदेलखण्ड के गत ४० वर्ष जैसे रक्त-रंजित रहे हैं, वैसा शायद ही कोई समय रहा हो।

छत्रसाल—बंधुओ, मुझे दुःख है कि मैंने बुंदेलखण्ड को इतनी यातनाएँ सहन करने को बाध्य किया, उसे भीषण अग्नि परीक्षाओं में डाला। आज सारा संसार छत्रसाल को जय-माला पहना कर, उसका अभिनंदन करता है, किंतु जिन्होंने वास्तविक जय प्राप्त की है, उनके नाम भी कोई याद न रखेगा। भाइयो, हम तो उन शहीदों के बलिदान के फल का उपभोग कर रहे हैं, जिन्होंने नींव के पत्थर बन कर स्वतंत्रता देवी के विशाल मंदिर के निर्माण में हमें सबसे महान् सहायता दी।

प्राणनाथ—स्वतंत्रता-देवी के मंदिर की यही विशेषता है। इस के निर्माण में जितने ही अधिक बलिदान देने पड़ें, उतना ही यह दृढ़ होता है। हमें अपनी इस सफलता पर हर्ष होना स्वाभाविक है, पर हमें यह न भूलना चाहिए कि हमारा केवल एक कार्य समाप्त हुआ है। हमारे सामने अभी विस्तृत कर्म-पथ है। जिस देश को इतने बलिदानों के पश्चात् हमने स्वतंत्र किया है, आज उसे सुसाशन की आवश्यकता है। जाज्वल्यमान प्राणोत्सर्गों का युग पीछे छूटा जा रहा है और क्षण-क्षण के नीरव बलिदान और ठोस सेवाओं का जमाना आ रहा है। भैया छत्रसाल, तुमने

मेरे जीवन का स्वप्न चरितार्थ किया है, इस पर मेरे हर्ष का ठिकाना नहीं, किंतु, तुम दीन-दुखी बुंदेलों को सुखी और संपन्न बनाने में और भी अधिक सफल हो, यह मेरी प्रबलतर कामना है। अब मैं संभवतः कुछ ही दिनों का मेहमान हूँ, फिर भी जब तक मैं जीवित हूँ, कर्म-पथ से नहीं हटूँगा। आज बुंदेलखण्ड से विदा लेकर मैं किसी और देश में स्वाधीनता का दीपक जलाने जाना चाहता हूँ। मुझे प्रेमपूर्वक विदा दो।

छत्रसाल—मेरे प्राणों के प्रकाश गुरुदेव! मुझे अंधा न करो। बुंदेलखण्ड के भाग्य विधाता! उसे अनाथ शिशु की तरह छोड़कर न चल दो।

प्राणनाथ—स्वार्थी मत बनो, भैया! तुम्हें अन्तश्चक्षु प्राप्त हुए हैं! बाहरी प्रकाश पर निर्भर होना छोड़ो। बुंदेलखण्ड में शक्ति का अक्षय स्रोत छिपा पड़ा है, उसे असहाय न समझो। इतना बड़ा भारत देश अभी दासता की जंजीरों में जकड़ा पड़ा है, भैया! जब तक वह संपूर्णतः स्वतंत्र न हो जायगा, मुझे एक जगह टिकने का अवसर न मिलेगा। जाने दो भैया, मेरी बूढ़ी हड्डियों को कहीं और साधना का दीप जलाने जाने दो। मैं तुमसे ही सारे देश को स्वतंत्र कराने का कार्य लेता, किंतु मैं देखता हूँ, जो बुंदेलखण्ड ५० वर्ष से निरंतर युद्ध में संलग्न है, उसके पास अधिक धन और जन होना अस्वाभाविक है। उस पर यदि अन्यायपूर्वक अधिक बोझ डालूँगा; तो जनता के असंतोष की ज्वाला में स्वतंत्रता देवी का मंदिर भी भस्मसात् हो जायगा।

इसलिए, भैया ! तुम अब अपना शासन सुदृढ़ करो और मुझे अन्यत्र जाकर वहाँ की छिन्न-भिन्न और मूर्च्छित शक्तियों को संगठित और जाग्रत करने दो। किंतु बुंदेलखंड से मेरा विशेष स्नेह है और मैं प्रयत्न करूँगा कि जब मुझे इस दुनिया से विदा लेना अनिवार्य हो जाय तब इसी बुंदेलखंड की मिट्टी में मेरी मिट्टी मिले।

छत्रसाल—अच्छा, तो जैसी आप की आज्ञा।

प्राणनाथ—आओ भाइयो, अब भगवती विंध्यवासिनी की आरती प्रारंभ करें।

(छत्रसाल थाल में कपूर जलाकर देवी की आरती करते हैं। सब आरती गाते हैं]

विन्ध्यवासिनी, देवि, कराली !
सिंहवाहिनी, हे असिवाली !
बल-विक्रम पौरुष की जन्मदायिनी माता !
शिव का डमरू तेरा अविरल गौरव गाता।
तव चरणों पर यम युग-युग से शीश झुकाता।
विश्ववंद्य, हे दुर्गा, काली !
विन्ध्यवासिनी, देवि, कराली !
हृदय-रक्त, से बुंदेलों ने पाँव पखारे।
तभी बने हैं वे तेरी आँखों के तारे।
रिपु से लोहा लेते तेरे, शूर, सहारे !
पिला रही तू बल की प्याली।
विन्ध्यवासिनी, देवि, कराली।

विन्ध्याचल की कठिन कटीली पर्वत-माला।
यहाँ साधना-दीप सुतों ने तेरे बाला।
रहे प्रज्वलित बुंदेलों के उर की ज्वाला!
अमर बुँदेला जाति निराली!
विन्ध्यवासिनी, देवि कराली!

[पटाक्षेप]